लीक पर वे चलें जिनके चरण
दुर्बल और हारे हैं,
हमें तो जो हमारी यात्रा से बनें
ऐसे अनिर्मित पंथ प्यारे हैं.

सर्वेश्वर

प्रकाशक :
सुशील बोहरा
बोहरा प्रकाशन
चौरड़ी का रास्ता,
जयपुर-३

प्रथम संस्करण १९७०
मूल्य ९.५० रुपये

मुद्रक :
मुन्नीलाल गुप्ता
स्वदेश प्रिंटर्स,
[illegible], जयपुर-३

क्रम

आत्मा की आवाज

अंधेरा गहरा था और रात प्रायः सुनसान। सारा गाँव जहाँ चैन की ींद सो रहा था, वहाँ हरिया उद्विग्न मन योजना बना रहा था। एक भया-ह योजना। प्रतिशोध की आग उसके मन में लपटें उठा रही थी और उन पटों की गहराई के पार उसे और कुछ नहीं दीख रहा था। इन्हीं लपटों र अपनी क्रूर भावनाओं की दृष्टि जमाये उसने मन ही मन निर्णय लिया ौर वह सरपंच के घर की ओर तेजी से बढ़ने लगा।

शाम से ही आसमान में बादल घिर आये थे और जब हरिया अपने र से बाहर निकला तब तक बूंदाबांदी शुरू हो गई थी। ज्योंही उसके हरी के बाहर कदम रखा कि आसमान में बिजली कौंधी, बादल गरजे ौर एक सनसनाती हुई डरावनी हवा पेड़ों के पार जंगल में खो गई। बिजली के प्रकाश में उसने देखा कि उसके हाथ में जो तेज धारवाली छुरी है, वह चमचमा उठी है। उसने उसे अपनी धोती और कमीज के नीचे छिपा लिया और इधर-उधर एक शंकाभरी दृष्टि घुमाई। जब देखा कि उसकी छुरी छिपाने की क्रिया को किसी ने नहीं देखा है तो फिर अपने कदम रास्ते पर बढ़ा दिये।

उसके पाँव प्रायः भारी पड़ रहे थे। हल्की फुहार तथा हवा की उपस्थिति में भी उसे लग रहा था जैसे पसीने की बूंदें उसके माथे पर घू आई हैं। उसने अपने आपको सम्भाला और मन ही मन अपने निश्चय को एक बार फिर दोहराया और रास्ता पार करने लगा।

र आ गया है वह इक्के-दुक्के पाँव रखत
की ईंटार की ओर से जिसकी कँगूरे कोई मुश्किल से साढ़े
घर के आँगन में कूद पड़ा। तभी एक बार फिर बिजली
और दूर कहीं मुर्गे के कौदन की डरावनी आवाज उभर

उसने अपनी अंटी में छिपी छुरी को टटोला और आश्वस्त
गया कि सरपंच गहरी सो रहा है। उसकी जिज्ञासा को
उसने देखा कि सामने बरामदे में बिछी खटिया पर सर-
खटिया के पास ही लालटेन का मद्धिम प्रकाश सरपंच
रही दे रहा था। सरपंच के परिवार के अन्य लोग कुछ
। आस पास किसी घर से कोई आवाज नहीं आ रही
रा रही थी, वैसे-वैसे सूनापन उसके अंक में भर रहा
था जैसे हर चीज पर श्मशान की सी खामोशी

अवसर हाथ से नहीं गंवाना चाहिए। अपने शत्रु
कर छुरी की प्यास और अपने बदले की आग को
क उसने अपना निश्चय फिर दुहराया और बर-
धोती की गाँठ से जा लगा। उसकी अंगुलियाँ
थोड़ी देर पहले जो छुरी कपड़ों के बीच छिपी
के बीच चमक रही थी। उसकी आँखों में क्रोध
र हाथ मजबूती के साथ उठने लगे। पाँव
और जैसे ही वह एक भरपूर हाथ खोए
दे से उस पर मारता, उसका पाँव आँगन
पड़ा और फिसल गया। वह गिरता-गिरता
र खट्ट की आवाज के साथ

कौन है ?–सरपंच ने लालटेन के प्रकाश में सामने खड़े युवक की आकृति को पहचानते हुए सारचर्य कहा-अरे हरिया तुम, क्यों आए हो इस समय? क्या इरादा है तुम्हारा?—

हरिया प्रायः हाँफ रहा था और उसकी फटी-फटी आँखें सरपंच को घूर से ताक रही थीं। उसका बाँया हाथ जिसमें छुरी की पकड़ अब हल्की पड़ गई थी, थरनि लगा था।

जाओ। इसी वक्त चले जाओ। इस समय तुम अपने आपे में नहीं हो—सरपंच अब पूरी तरह सम्भल गया था और उसने हरिया के हाथ में चमकती छुरी को भी देख लिया था।

मैं तुम्हारा खून पिये बिना नहीं जाऊँगा—हरिया आवेश में बकने लगा-तुमने गाँव भर में मेरी मिट्टी पलीद की है। सरपंच होने के मद में तुमने जो जी में आया फैसला दे दिया। न्याय-अन्याय कुछ नहीं देखा। मैं आज तुम्हें अपने स्वार्थ का मजा चखाने आया हूँ-कहता हुआ वह आगे बढ़ने लगा।

अन्धे मत बनो हरिया। पंच और सरपंच का फैसला किन्हीं स्वार्थों पर नहीं होता। पंच के मन में परमेश्वर निवास करते हैं। पचायत के फैसले को बदनाम मत करो और शांत होकर लौट जाओ। सरपच ने हरिया के हाथ से छुरी छीन ली।

क्रोध का दरिया जो हरिया के मन में हिलोरें ले रहा था ग्लानि और उदासी के आँसू बनकर वह चला। वह रो पड़ा। उसने चीखकर कहा– तो बताओ, मेरा क्या कुसूर था। क्या मन्दिर के पास वाली जमीन मेरी अपनी बपौती की जमीन नहीं है? उसमें मेरा हक नहीं? फिर मेरी मरजी के खिलाफ गाँव वालों का मेला लगे? क्यों? ...उसके मन में आक्रोश बढ़ आया। बोला-यह सब तुम्हारी वजह से हुआ। तुमने मेरे साथ धोखा किया। फैसला देने से पहले तुमने कहा था कि मैं तुम्हारा ख्याल रखूंगा। तुमने खाक ख्याल रक्खा?

ठीक यही बात मैं तुम्हें समझाना चाहता हूँ–सरपंच ने कहा–जो कुछ हुआ वह मेरी वजह से नहीं–पंचों के फैसले के कारण भी नहीं, सिर्फ तुम्हारी अपनी वजह से हुआ। तुम चाहते तो यह बात पंचायत तक आती भी नहीं। सरपंच ने हरिया को समझाने की कोशिश की।

हरिया को सरपंच की बातें विचित्र सी लगीं। कहाँ सरपंच को अन्यायी समझकर उसे मारने आया था और कहाँ सरपंच स्वयं उसे दोषी ठहरा रहा था? वह भर्राये हुए स्वर में बोला–सो कैसे? मैंने क्या किया है? अपनी जमीन, अपने घर में गैर को आने के लिए मना करना कोई दोष नहीं।

अपना घर–अपनी जमीन, गैर–पराया, यह सब क्या है हरिया? यही सोचना तो दोष की बात है। अब तुम्हीं कहो, गाँव में कौनसा घर तुम्हारा अपना घर नहीं। कौन गैर है? कौन पराया? सब भ्रम है। मन का भ्रम। कौन कुसूर हो जायेगा गाँव वालों का, खाली जमीन पर मेला लगा लेंगे तो। फिर वहाँ वर्षों से मेला होता आया है।

सच मानो हरिया, सरपंच के स्थान पर आने से पहले तो शायद मेरे मन में भी खोट रही होगी। पर वहाँ आने के बाद दूध का दूध और पानी का पानी साफ नजर आने लगता है। न्याय और अन्याय की तराजू के झूलते पलड़ों में उसकी पैनी दृष्टि को ठहराव का बिन्दु पहचानने में देर नहीं लगती। सरपंच ने कहा।

हरिया का आवेश अब प्रायः धीमा और शान्त होता जा रहा था। वह मन्त्रमुग्ध सा सरपंच की बात सुन रहा था।

तुमने कभी सुनी है–एक आवाज? जो हमेशा, हर घड़ी हमारा पीछा करती है। हमें प्रेरणा देती है, हमें रोकती है। खींचती है। पुकारती है। और हम उस आवाज के पीछे खिंचे चले जाते हैं। शायद नहीं, बहुत कम लोग हैं जो इस आवाज को सुनते हैं। पहचानते हैं और उसके निर्देश पर अमल करते हैं।

सरपंच कहे जा रहा था—जानते हो, उस आवाज का निर्देश क्षणिक होता है। बस, फिर वही सांसारी मोह और क्रोध। तुमने उस आवाज को नहीं सुना। पचों के फैसले को गलत समझा, और गाँव वालों को, अपनो को पराया समझा। तुमने उस आवाज की अवहेलना की और यहाँ तक चले आए, ऐसा खतरनाक इरादा लेकर। मैं चाहूं तो तुम्हें इसी समय पुलिस के हवाले कर सकता हूँ। लेकिन नहीं, जाओ और कोशिश करो शायद तुम्हें यह आवाज फिर सुनाई दे जाये। यह आवाज और किसी की नहीं, तुम्हारी अपनी आवाज है। तुम्हारी आत्मा की आवाज, जो तुम्हें भटकने से बचाएगी।

हरिया को लगा जैसे उसके रोम-रोम में गहरे तक कोई तार झनझना उठा है। उसके मन का खालीपन जैसे किसी गूंज से भरता जा रहा है। उसे एकाएक वह क्षण याद हो आया जब वह सरपंच के खून का क्रूर निर्णय ले रहा था। उस समय सचमुच उसने एक आवाज सुनी थी। एक हल्की सी आवाज जिसे उसने अनसुनी करदी थी। शायद वही उसकी आत्मा की आवाज थी जिसने उसे यह निर्णय लेने को एक क्षण रोका था और फिर उसका क्रोध उस आवाज पर हावी होकर आँखों में उतर आया था।

इससे पूर्व कि सरपंच उसे और कुछ कहता हरिया सरपंच के पैरों पर गिर पड़ा। दूसरे ही क्षण उठकर वह उस सुनसान रात मे ही अपने घर लौट गया। शायद अपने पाप का प्रायश्चित करने अपनी आत्मा की आवाज सुनने"""।

❖

मृगतृष्णा

तीस बरस की उम्र में ही जिन्दगी की राहों के बहुत मोड़ पार कर चुका हूँ। लगता है जैसे बहुत दूर तक बढ़ आया हूँ। पाँव थक गये हैं मंजिल भटक गया हूँ। जो खोजना चाहता हूँ उसे चाहकर भी नहीं खो पाता हूँ। हर क्षण एक नई दिशा का संकेत देता है। आगे चलते रहने का निर्देश। पीछे मुड़कर देखता हूँ तो जैसे धुंआ ही धुंआ नजर आता है। इस धुंए में बहुत से चित्र उभरते और मिटते हुए देखता हूँ। बहुत से परिचित चेहरे। नजदीक और दूर के रिश्ते के लोग। अपना घर। बच्चे औरत-मर्द। पड़ोसी। सबके चेहरे स्मृति के साथ ही उस धुंए में बनते हैं और मिट जाते हैं। मैंने स्वयं कई बार कोशिश की है कि उन सब आकृतियों के करीब जाकर देर तक उन्हें देखता रहूँ। उनसे बातचीत करूँ। उनके सुख-दुख में शामिल होऊँ। हँसी-खुशी के साथ बहुतसा समय उनके साथ गुजारूँ। किन्तु सामने देखते ही उन सब चित्रों को, आकृतियों को जैसे बिल्कुल भूल जाता हूँ। लगता है इन सबसे मेरा कभी कोई सम्पर्क या सम्बन्ध नहीं रहा। ये सब मेरे लिए बिल्कुल अनजान और अपरिचित है। अजनबी।

जब से इस नये शहर में आया हूँ, दिन ब दिन नये नये लोगों में घुलता जा रहा हूँ। बहुत से नये लोग परिचित हो गये हैं। बिल्कुल आत्मीय। भाई जैसे। यहाँ-वहाँ बहुत से कामों में उलझ गया हूँ। यह सब कुछ पिछले पाँच सालों में हुआ है। पाँच वर्ष पहले जब इस शहर में

तबादले पर आया था तो मन में यहाँ के प्रति कितनी अनासक्ति, कितनी अनास्था थी। बहुत दिनों तक यहाँ आने को टालता भी रहा और जब पहुँच गया तब भी कहीं, किसी जगह पर अपना मन नहीं लगा सका। पार्क, सिनेमा, होटल सभी कुछ था यहाँ। पर जैसे मन बरबस ही पीछे दौड़ता था। विगत की ओर। उसी शहर, उसी वातावरण और उन्हीं लोगों के बीच, जहाँ मेरा बचपन गुजरा। कैशोर्य ने अँगड़ाई ली और मुझे युवावस्था तक पहुँचाया। लगता था जैसे मोहल्ले के घरों की प्रत्येक दीवार मुझे पुकार रही है। बचपन का हर साथी मुझे अपने पास लौट आने के लिये आवाज दे रहा है। मैं हर पुकार, हर आवाज के साथ काँप जाता। नया शहर, नये लोग बिल्कुल नहीं रुचे। किसी जगह से तबीयत नहीं भरी। ड्यूटी जोइन करने के तीसरे रोज ही छुट्टी पर चला आया। जितनी छुट्टियाँ थीं, गुजार दीं। एक तरफ ऑफिस से जल्दी ड्यूटी पर आने का नोटिस मिला तो दूसरी ओर वृद्ध पिता ने साँस छोड़ दी। दस बारह दिन तक भरपूर गम के बीच रुकना पड़ा। पिताजी के गुजर जाने के बाद मैंने बहुत अकेला महसूस किया अपने आपको। जानता हूँ, तब भी परिवार के बहुत से लोग साथ थे—दो भाई, बहिनें, भाभी। उनके बच्चे। फिर भी अकेलापन। निपट एकाकीपन। और शायद इसी एकाकीपन ने पुनः यहाँ चले आने के लिए एक हल्की सी प्रेरणा दी थी। पर तब भी उस प्रेरणा का स्थायित्व नहीं रह पाया। मैं घर के हर बुलावे पर अपने शहर पहुँच जाता। कितनी प्रसन्नता होती थी तब। किसी मेले, किसी त्यौहार को नहीं छोड़ा।

सबकी याद के साथ ही इन दिनों शीला की याद विशेष रूप से आती। शीला की शादी हो चुकी थी। पर जाने क्यों उसका खिंचाव मेरी ओर अधिक था। शायद इसलिये कि उसका पति उसका ख्याल नहीं रखता था। जरूरत से ज्यादा नशा करता था। लेकिन नहीं, उसके पति को कभी उससे कोई शिकायत नहीं रही। मैंने स्वयं भी उसे कभी ऐसी स्थिति

अथवा ऐसी बातचीत करते नहीं पाया जिससे ऐसा कुछ अन्दाजा लगाया सके। पर हाँ, मेरी ओर उसका झुकाव था। वह कई कई बार तन्मय व से मेरी ओर देखा करती। मुझसे जब भी बातचीत करती, एक ऐसा व जताती जिससे लगता जैसे मेरा उस पर बहुत बड़ा अधिकार हो। स्वयं भी उसके प्रति आसक्त हो चला था। यह जानते हुए भी कि कुछ लाकर इस खेल मे मेरे अथवा शीला के हाथ कुछ नहीं लगने वाला। किंतु ने उस समय मेरी कौनसी कोशिश मुझ पर हावी हो गई थी कि शीला प्रत्येक बात मुझे अच्छी लगती। जो होता काश! मैं शीला के लिए द कर पाता। बस, यदि यह स्थिति प्यार की स्थिति थी तो शीला से क प्यार था और अब प्यार अपनी चरम सीमा की ओर बढ़ रहा था तभी क यहाँ, इस नये शहर में आना पड़ा।

यहाँ आने के बाद एक दिन दो पत्र एक साथ मिले थे। जिनमें एक ला का था और दूसरा मेरे बचपन के दोस्त अनिल का। अनिल के पत्र साथ ही उसकी शादी के निमंत्रण का कार्ड भी था। शीला के पत्र में र्फ दो ही पंक्तियाँ थीं—

बड़ी मुसीबत मे हूँ। यहाँ आ सको तो तुम्हें अपने मन का हाल कह र उसका भार हल्का कर सकूँ।

इस छोटे से पत्र ने मुझे बहुत प्रभावित किया। यूँ कहूँगा कि मेरे तर के तारों को झकझोर दिया। इस पत्र मे मैंने अपने बहुत से प्रश्नों : हल खोज लिया। मैंने यह मान लिया कि शीला मुझसे प्रेम करती है। के देखने के लिए व्याकुल है और अपने दुख-सुख का साथी समझती है ने। अनिल की शादी का निमंत्रण भी था। किन्तु कदाचित् उससे भी धिक शीला के पत्र का नशा। उसी नशे में मैं अपने शहर पहुँच गया। ला से मिला। पर उसके चेहरे पर वैसी गम्भीरता के भाव नहीं देख मझा मैंने पत्र पढ़कर अनुमान लगाया था। वह सामान्य स्थिति मे मसे मिली। मुझे अनिल की शादी मे व्यस्त होना पड़ा। शीला मे जो

बात होनी थी, वह नहीं हो पाई। मुझे शायद उसकी जरूरत भी महसूस नहीं हुई।

इस बार परिवार के लोगों में मैंने एक नई बात देखी। उन्हें मेरे वहाँ आने से अधिक प्रसन्नता नहीं हुई। सभी ने एकदम साधारण व्यवहार किया। मैंने सोचा, शायद इन लोगों को मेरा बार-बार यहाँ चले आना नहीं रुचता।

मैं लौट आया और यह निश्चय किया कि अब यहाँ अपनी मेल मुलाकात बढ़ाऊँगा। अब बार-बार वहाँ नहीं जाऊँगा। पूरे डेढ़ वर्ष तक मैंने अपने इस निश्चय को निभाया। इसी बीच कई मित्रों के लम्बे-लम्बे स्नेह भरे पत्र मिले। दो तीन मित्रों ने अपनी शादी में बुलाया। यहाँ तक कि अनेक घरेलू उत्सवों एवं संस्कारों में भी शामिल होने नहीं गया। और हरबार बधाई तार भेजता रहा।

मुझे याद है बड़ी भाभी की बीमारी के समय भाई साहब ने दो बार तार दिया। पर मैं नहीं पहुँच सका। कई कठिनाईयाँ थी। भगवान की दया से उनकी तबीयत ठीक हो गई। किन्तु शायद मुझ से दोनों रुष्ठ हो गये।

फिर ये स्नेह और आग्रहभरे पत्र भी कम हो गये। कोई मित्र किसी काम से आता तो मुलाकात हो जाती। स्मृतियाँ करवटें लेती और मुझे फिर अपने अतीत में पहुँचा देती। किन्तु मुझे बीते हुए हर दिन के बाद ऐसा लगता जैसे मेरे वर्तमान और विगत जीवन की खाई कुछ और लम्बी हो गई है।

एक दिन स्टेशन पर अचानक शीला से भेंट हो गई। वह अपने पति के साथ थी। वे लोग आगरा जा रहे थे। शीला की गोद में बच्चा था। मैंने देखा, शीला के चेहरे से चंचलता के सभी भाव जैसे काफूर हो गये हैं। वह तन्मयता, वह शोखी जैसे हवा हो गई। शीला की वह तस्वीर मुझे गृहस्थी की एक साफ सुथरी तस्वीर लगी। वह सिर्फ इतना ही पूछ सकी—कैसे हो रजनीश !

अच्छा हूँ। तुम लोग कैसे हो।

देख ही रहे हो। तबादले पर आगरा जा रहे हैं।

कुछ दिनों बाद मेरा विवाह भी यहीं इसी शहर में हो गया। सब
छ इतनी जल्दी हुआ कि अपने शहर के सब मित्रों को भी निमंत्रित नहीं
र सका। यहाँ भी पर्याप्त परिचित लोग थे। बुजुर्गों में रिश्ते के चाचा
ची थे, जो यहीं थे। भाई और भाभी नहीं आए। शायद नाराजगी के
रण। बहिनें आईं तो जल्दी ही चली गईं। हाँ इस समय माताजी और
ताजी की कमी महसूस की। काश, वे दोनों जिन्दा होते।

बड़े भाई साहब के बहुत आग्रह करने पर एक अर्से बाद अपने घर
या। शायद वे जमीन जायदाद का फैसला करना चाहते थे। एक अर्से
बाद वहाँ पहुँचा तो सोचा था अपने बचपन के मित्रों से एक बार फिर
हँसी-खुशी के साथ मिलूँगा। अपने घर, मोहल्ले और शहर की हर
से एक बार फिर परिचित होऊँगा। पर सब कुछ जैसे बिल्कुल ही
-नया सा लगा। मेरे बहुतसे साथी अपने अपने धन्धे के सिलसिले में
चले गए थे। जो रहे, वे गृहस्थी में पड़कर जैसे बिल्कुल ही शिथिल
ए थे, जैसे जिन्दगी की गाड़ी को धक्के देकर चला रहे हों। चेहरों से
था जैसे कह रहे हों हमें जीना है इसलिये जी रहे, बस। जिन
के घर तब एक बच्चा था उनके यहाँ पाँच-पाँच की पलटन लगी थी।
किशोर हो गए थे। कुछ अब भी मुझे नहीं पहचानते थे। नए घर नई
, नए लोग, मोहल्ले की हर दीवार अपरिचित सी।

लगा जैसे मैं अपने विगत जीवन के सुखद क्षणों की प्यास लिये दूर
फैले किसी विशाल रेगिस्तान में पहुँच गया हूँ जहाँ मेरी प्यास की
के लिए पानी सा दिखाई देता है पर असल में है नहीं। मैं उसे पाने
दिश में चलता, चलता थक गया हूँ। फिर सोचता हूँ यह वह तृष्णा
से कुछ हासिल नहीं। एक मृगतृष्णा! मात्र मृगतृष्णा.....

भोर का सपना

वह बहुत गरीब आदमी था और एक कार्यालय मे क्लर्क के पद पर कार्य करता था। समय पर कार्यालय पहुँचकर छुट्टी होने तक लगातार उसे कागजों में उलझा रहना होता था। वह यहाँ-वहाँ गप्पे लगाने मे अपने समय का दुरुपयोग नही किया करता था। लगन से काम करना उसे सुहाता भी था।

मैट्रिक के बाद ही उसे नौकरी करनी पड़ी और अबतक उसे ईमानदारी से निबाहे जा रहा था। उसकी उम्र कोई तीस के करीब होगी। लेकिन फिर भी उसके बाल सफेद हो,रहे थे, चेहरेपर झुर्रियाँ उभरने लगी थी। कार्यालय में काम करने के बाद उसमे इतनी सामर्थ्य नही रहती थी कि कोई पार्ट टाइम धंधा करके अपने परिवार की आर्थिक स्थिति मे सुधार लासके। उसने दो एक बार इसकी चेष्टा भी की थी और उसे एक प्राईवेट फर्म में साइड जोब मिल गया था। किंतु ऐसा करने पर उसेलगा कि इसका उसके कार्यालय के काम पर उल्टा असर पड़ रहा है। उन दिनों अक्सर दोपहर के समय उसका सर भी भारी रहता। दिन भर आलस्य छाया रहता। इसके उपरान्त भी उसे विशेष अर्थ प्राप्ति भी नही हो पाती। उसे यह सब ठीक नही लगा और वह पूर्ववत् अपने कार्यालय के काम को ही अधिक ध्यान से करता रहा। उसका अफसर उससे, अन्य लोगों की अपेक्षा प्रसन्न था। क्योंकि वह अधिक लगन से कार्य करता था।

वह उस कार्यालय का एक विश्वसनीय क्लर्क था। क्योंकि उस कार्यालय मे कोई कोन्फीडेंशियल क्लर्क की जगह नही थी। अतः उसके

अफसर ने सारे गोपनीय कागजात भी उसी को सौंप रक्खे थे। इसी कारण से उसके कुछ साथी तो उससे काफी मेल-जोल रखते और कुछ जलते थे। कुछ ईर्ष्यालू थे जो अन्दर ही अन्दर उससे डरते भी थे। वह स्वयं सभी से मेल जोल का व्यवहार रखता था।

आज उसे ठीक समय पर दफ्तर पहुँचना था। यों वह देर से आने वालों में से नहीं था। किन्तु आज अपेक्षाकृत वह दफ्तर में साहब से पहले पहुँचना चाहता था। साहब ने आज दस बजे ही दफ्तर पहुँचने को कहा था। उसने घड़ी की ओर देखा। दस बजकर दस मिनिट हो रहे थे। उसे एक क्षण के लिए अपनी पत्नी सीता पर कुछ झुंझलाहट सी हुई, क्योंकि आज उसी के कारण घर पर ही उसे दस बज गए थे। पतीली में साग छौंककर वह बहुत देर तक पड़ोसिन के यहाँ चली गई थी। पड़ोसिन बहुत दिनों के बाद अपने पीहर से लौटकर आई थी और अपने बच्चे को भी साथ लाई थी जिसकी सूरत उसकी श्रीमती ने अब तक नहीं देखी थी। पौने दस तक वह लौटी तो वह भोजन करने बैठा। हालांकि उसी समय उसकी इच्छा हुई थी कि वह सीता को डांटे। किन्तु वह कुछ नहीं बोला। साधारण-तौर पर उसे सीता से कोई शिकायत नहीं रहती। शायद इसलिये कि उसने भी स्वयं उसकी तरह घर की माली हालत से समझौता कर लिया था। सीता एक सम्पन्न परिवार मे पली थी और आरम्भ से उसके रहन स..न को देखकर उसे कई बार यह सन्देह होने लगता था कि जाने उसके साथ सीता का निर्वाह हो सकेगा ? किंतु अब उसे संतोष था। क्योंकि उसकी यह चिंता दूर हो गई थी।

आरम्भ मे तो वह उसकी सभी जरूरतें पूरी करता रहा। बाद में एक ऐसी स्थिति आ गई जबकि सीता स्वयं उसे अपने लिए कुछ लाने को मना कर देती। अब यदि वह उसे दो तीन महीने के अन्तर में एक साड़ी और एक ब्लाउज का कपड़ा दिला पाता, तो भी उसे प्राप्त करके वह संतोष कर लेती।

सीता के बारे में उसने आगे कुछ नहीं सोचा और अब वह कागजों के बारे सोच रहा था जो उसे आज अपने अफसर के सामने पेश करने थे। आज बहुतसे जरूरी कागजों पर उसे दस्तखत लेने थे। दोपहर के तीन बजे बाद उसका अफसर पूरे ग्यारह दिन के लिए दौरे पर जाने वाला था। जरूरी कागजों की बात सोचते समय उसे ठेकेदार हनुमानसिंह का ख्याल हो आया। पिछले कई दिनों से वह उसे अपना टेन्डर मन्जूर करवा देने के लिए कह रहा था। वह जानता है कि उसका अफसर कोई बात नहीं टालता और फिर हनुमानसिंह के टेन्डर में दी गई रेट्स तो वैसे भी सबसे कम हैं। यह बात उसके अतिरिक्त और कोई नहीं जानता। लेकिन ठेकेदार के कई बार आग्रह करने के बाद भी उसने यह बात जाहिर नहीं की। आज इसका निर्णय हो जायेगा एक क्षण उसके मस्तिष्क में विचार आया, यदि वह चाहे तो इस मामले में ठेकेदार से एक अच्छी खासी रकम वसूल कर सकता है। किन्तु शीघ्र ही उसे अपनी स्थिति का भान हो आया। उसने आज तक किसी से रिश्वत नहीं ली। फिर आज उसके मन में यह बात क्यों आई? नहीं, उसे ऐसा नहीं सोचना चाहिए।

उसका दफ्तर आ चुका था, चपरासी ने उसे बताया कि साहब ग्यारह बजे आयेंगे तो उसने संतोष की सांस ली।

एक ईमानदार क्लर्क की जिन्दगी में वे क्षण अत्यन्त महत्व और आनन्द के होते हैं, जब वह अपनी टेबल पर रखे सभी कागजों को नियमानुसार डिस्पोज ऑफ कर देता है। उसे भी आज कुछ ऐसे ही आनन्द की अनुभूति हो रही थी। शाम के सात बज चुके थे और वह अपनी छत पर बैठा मन ही प्रसन्न हो रहा था। आज वह अपने पूर्व निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार सभी कागजों को डिस्पोज ऑफ कर आया था। यह सोचकर वह और भी खुश हो रहा था कि उसके अफसर ने उसके बनाए हुए नोट्स पर अपनी स्वीकृति दे दी है। अब इन कागजों पर वही एक्शन लिया जायेगा, जिसका उसने प्रस्ताव किया था। उसके नोट्स पर उसका अफसर

कभी कोई नुक्ताचीनी नहीं किया करता । उसे यह सोच
हुआ । तभी उसकी पत्नी ने आंगन से पुकारा-अजी सुनते
फिर अपनी स्लेट तोड़ लाया है ।

वह कुछ चौंक सा गया । शायद आनन्द का कोई एक
लिए उपभोग्य नहीं । आज एक अर्से के बाद वह अपने आप
अनुभव कर रहा था, क्योंकि पिछले कई दिनों से उसे दफ्
न एक कागज की चिन्ता लगी रही थी । परिवार की
अतिरिक्त थीं ।

वह नीचे आया और अपने लड़के प्रशान्त से कहा-क्यों
दो दिन नहीं हुए कि तुमने अपनी स्लेट तोड़ दी । कल तुम अपने
का पट्टा तोड़ लाये । परसों तुमने अपनी हिन्दी की पुस्तक
ऐसे कैसे काम चलेगा बेटा ? अब तुम बड़े हो गए हो, अपनी चीजों
रखा करो । देखो, हमें कितनी मेहनत के बाद पैसा मिलता है—
उसे ध्यान आया कि यह पैसे वाली बात उसे प्रशान्त से नहीं कहनी
अन्यथा उस पर इसका गलत प्रभाव पड़ सकता है । उसके लिए
के ये शब्द उसे काफी लगे । वह कुछ नहीं बोला । अपनी पत्नी
ओर देखा तो उसे अपनी गरीबी का एहसास होने लगा । उसकी
लगभग जर्जर हो चुकी थी । ब्लाउज पर भी जगह-जगह टांके
थे । इन फटे हालों में उसे सीता का चेहरा भी मुर्झाया हुआ सा लगा

सीता ने कहा—हो सके तो इसे अब कापियां लिखवाया कीजिए
स्लेट पर आखिर कब तक काम करेगा ? अब यह चौथी क्लास में आया
है । इसके सब साथी कापी पेंसिल ही रखते हैं ।

अगले महीने ले दूं कापी—उसने हुक्के से स्वर में कह दिया ।

लेकिन फीस का क्या कीजिएगा ?

फिर इसकी स्कूल की ड्रेस को फटे हुए भी दो महीने हो गए। अब तो इसे खुद ही शर्म आने लगी है।

हाँ पापा, कल ही बिल्लू कह रहा था—क्या तुम्हारे पास ड्रेस खरीदने को पैसे नहीं ?—प्रशान्त ने कहा तो उसे एक धक्का सा लगा। उसने इसका कोई उत्तर नहीं दिया और रसोईघर मे चला आया। सदा की तरह आज भी चने की दाल पकाई गई थी। उसने जैसे-तैसे तीन चार रोटियाँ खाई और आंगन मे आगया। तभी बाहर से किसी ने दरवाजा खटखटाया।

उसने देखा, दरवाजे पर ठेकेदार हनुमानसिंह खड़ा है।

बाबू साहब।

आइये।

दोनों अन्दर आंगन मे बिछी खटिया पर बैठ गए।

कहिये कैसे तकलीफ की ?—उसने औपचारिक तौर पर पूछा।

बस यूं ही, आपके दर्शन को चला आया था—ठेकेदार ने सहज भाव से कहा।

लेकिन हम लोग आज दफ्तर मे मिल चुके थे—उसने कहा।

हाँ, फिर भी क्या घर मे नहीं मिल सकते ?—हनुमानसिंह बोला।

नहीं, मेरा मतलब यह नहीं, मेरा मतलब है-मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ ?—उसने कुछ झेंपते हुए कहा।

आपसे क्या कुछ छिपा है ? एक अर्ज करने आया था। इसे अपने बाल बच्चों के लिए रख लीजिये-कहते हुए ठेकेदार ने एक बड़ा सा लिफाफा उसके हाथों मे थमा दिया। लिफाफे मे सौ सौ के दस नोट थे।

नहीं मुझे इतने रुपयों की जरूरत नहीं—उसने कहा।

जरूरत न सही, इसे मेरी तुच्छ भेंट समझकर रख लीजिये-ठेकेदार बोला।

नहीं, यह ठीक नहीं। रिश्वत लेना पाप है।
नहीं सकता।

अपने मुंह से थूकिये बाबजी, रिश्वत लेने
सत्यानाश हो जावे। क्या आपने मुझे इसके लिए मजबू
कुछ कहा था? फिर रिश्वत कैसी? मुझे अपना दोस
अपने पास रख लीजिये। बच्चों के लिए। भाभी आदि के

लेकिन नहीं, यह सरासर घूस है। कल को यदि आप
नहीं हुआ तो क्या आप यह रकम मुझसे वापस वसूल
शायद कल जेल के सींखचों में होऊंगा।—उसने ठेकेदार
के लिहाज से पूछा।

कैसी बातें करते हो बाबू। जेल के लिए क्या आप ह
कसम ले लो बजरंगबली की। मैं अपने मुंह से उफ् भी क
असल बाप की औलाद नहीं। अच्छा अब मैं चलता हूं। बहुत
मुझे—कहकर ठेकेदार उठने का उपक्रम करने लगा।

नहीं, नहीं इन्हें भी अपने साथ ले जाइये। विश्वास रखि
टेन्डर मंजूर हो जावेगा। इसके लिए आप व्यर्थ में इतनी रकम
ना चाहते हैं? यह रिश्वत है और मैं रिश्वत कभी नहीं लेता—उ
दद करते हुए ठेकेदार को लिफाफा थमा देना चाहा।

अच्छा अच्छा। आप यदि मेरी यह तुच्छ भेंट स्वीकार
ते तो इसे मेरी अमानत के रूप में रातभर के लिए अपने प
..जेये। कल सुबह तक मेरा आदमी आकर आपसे यह लिफा
जावेगा—कहता हुआ वह तेजी के साथ दरवाजे के बाहर हो गया।

नींद की जगह रातभर उसकी आंखों में सौ सौ के नोट
लगाते रहे। वह उनके उपयोग की अनेक सम्भावनाओं पर सोचता र
सुबह साढ़े चार बजे के करीब उसकी आंख लगी। उसने स्वप्न में
कि बरबस ही कोई उसके पास से उसकी ...
ले जा रहा है ...

दिया जाता है। फिर दोनों उसकी आँखों से एकदम ओझल हो जाते हैं और वह उनकी तलाश में भूखा-प्यासा सुदूर रेगिस्तान में पहुँच जाता है। कहीं कोई आवाज नहीं। शून्य में स्वयं उसी के शब्द गूंजते हैं-सीता! फिर वह एक और मैदान देखता है। सौ सौ के नोटों का मैदान जहाँ उसे प्रशान्त का हल्का सा स्वर सुनाई देना है। वह उस मैदान की ओर बढ जाता है। हवा का एक तूफानी भोंका आता है। नोट बहुत दूर जा उड़ते हैं। उसे लगता है जैसे नोटों के मैदान की सतह थोथी और बेबुनियाद है, जिसमें सिवाय दलदल के और कुछ नहीं। उस दलदल से निकलने की लाख कोशिश करने के बाद भी वह धंसता ही चला जा रहा है·······

वह एकाएक चीखकर जाग पड़ता है

उसकी पत्नी भी जाग जाती है और साश्चर्य पूछती है—क्या हुआ? कोई सपना देखा क्या?

हाँ सपना! बहुत भयानक सपना।

सुना है भोर का सपना प्रायः सच हुआ करता है- सीता भयभीत सी होकर कहती है।

हाँ, लेकिन मैं उसे सच नहीं होने दूंगा-वह उठा और नोटों का लिफाफा लेकर सीधा ठेकेदार के घर पहुँच गया। ठेकेदार ने दरवाजा खोला। इतनी सुबह उसे अपने घर पाकर आश्चर्य के साथ पूछा—आप, इस समय?

हाँ, मैं? आपको सूचित करने आया था कि आपका टैन्डर मंजूर हो गया है। यह लीजिये अपनी अमानत। मेरे कंधे इन नोटों का भार वहन नहीं कर सकते। इन्हें अपने ही पास रखिए-कहते हुए उसने नोटों का लिफाफा ठेकेदार को थमा दिया।

लौटते समय उसके कदम काफी तेजी से उठ रहे थे। उसे लगा उसके मन पर अब विषाद की कोई परत शेष नहीं है। ❖

पत्नी

यह काली युवती उसकी पत्नी है। ऑफिस से लौटते समय उसने दूर से अपने मकान के द्वार पर प्रतीक्षा करती हुई अपनी ब्याहता पत्नी को देखा। वह हर रोज इसी प्रकार उसकी प्रतीक्षा में पथ पर आँखें बिछाये रहती है। पर उसे यह सब अच्छा नहीं लगता। मुहल्ले के या उस राह से गुजरने वाले लोग उसकी पत्नी को देखकर निश्चय ही मुँह फेर लेते होंगे—उसने सोचा। भला इस बेहद काली युवती पर किसी की नजर कहाँ टिकती होगी। तभी उसके करीब से एक गेहुँए रंगवाली सुन्दर लड़की गुजरी। उसने पहले इस लड़की को और फिर अपनी पत्नी को देखा। जाने क्या सोचकर वह गम्भीर हो गया।

अपने घर के करीब आकर लगा कि उसे आया देखकर उसकी पत्नी के चेहरे पर प्रसन्नता की मुस्कुराहट फैल गई है। उसके काले चेहरे पर उसके सफेद मोती से दाँत चमक रहे हैं। उसके होंठ उसकी अगवानी में कुछ कहने को आकुल हैं। पत्नी की मुस्कुराहट के उत्तर में एक फीकी सी हँसी उसके होंठों तक आई और चली गई।

आप आगए—पत्नी ने प्रसन्नता प्रकट की।

हाँ, आज कहीं और जाने को जी नहीं किया। सोचा सीधा घर चला चलें—उसने कहा।

अच्छा किया आपने। यदि सदा ऐसा ही करें, दफ्तर से सीधे घर का रास्ता करें तो कितना अच्छा हो।

वह चुप रहा। कुछ देर उसकी पत्नी भी चुपरही। उसने कपड़े उतारे और कमरे मे पड़ी आराम कुर्सी पर लुढक गया। उसकी पत्नी ने पंखे का स्विच ऑन किया। हल्की-हल्की हवा उसके वदन में फुर्ती भरने लगी।

आपको याद है ? पत्नी ने पूछा।

क्या ? जैसे वह नीद से चौंककर जाग गया।

कल आपका जन्म दिन है । उसकी पत्नी की बत्तीसी चमक उठी।

हाँ ! उसने हताश स्वर में कहा।

जन्म दिन की याद दिलाने पर इनाम देना पड़ता है—उसकी पत्नी ने सहज भाव से मुस्कुराते हुए कहा।

उसने पत्नी की ओर देखा। कुछ क्षण उसके चेहरे पर खेल रहे भावों को पढ़ता रहा। फिर बोला-तो तुम्हे भी इनाम चाहिये। क्या चाहिये ? कुछ क्षण रुककर उसने कहा-काले चेहरे पर लाल बिन्दी—और वह हँसने लगा।

उसकी पत्नी का चेहरा फीका पड़ गया। वह कुछ उत्तर नही दे सकी। उसने चुपचाप अपना मुँह फेर लिया। दो गरम-गरम आँसू उसकी आँखो से लुढक गये।

नाराज हो गई सुधा—उसने देखा सुधा रो रही है—अरे, तुम तो रोने लगी। मैंने तो यों ही मजाक मे कह दिया था। वैसे मेरा इरादा""मेरा मतलब है""।

आपका मतलब मैं समझती हूं—सुधा ने सिसकते हुए कहा। भला इसमें मेरा क्या दोष है ? भगवान ने मुझे उजला रंग नहीं दिया और सजोग से आपके साथ, इतने रूपवान आदमी के साथ बाँध दिया। भगवान के लिये मुझे कालेपन का ताना मत दिया कीजिये, वरना मैं किसी दिन नदी मे डूबकर मर जाऊंगी। आपने मुझे सहारा दिया है, मैं जिन्दगीभर आपकी पूजा करते नही थकूंगी।

अरे, तुम भी बात को खींचकर कहाँ ले गई ? भला सुधा, अगर मुझे
[तुम्]हारे रंग से शिकायत होती तो तुमसे ब्याह ही क्यों करता ? उसने
[कह]ा ।

वह तो आपको अपने माता-पिता की मर्जी से करना पड़ा । वरना...

वरना क्या ।

वरना आप मुझे क्यों पसन्द करते ?

अरे, क्यों नहीं करता । भला तुम्हारा रंग काला हुआ तो क्या हुआ ।
नाक नक्शा तो किसी से कुछ कम नहीं । और फिर तुम घर के कामकाज में
जितनी होशियार हो, उतनी होशियार पत्नी मुझे कहाँ मिलती—कहते हुए
उसने सुधा को अपने करीब खींचकर उसके गाल पर एक हल्की सी चपत
लगा दी ।

सुधा प्रसन्न हो गई । अभी-अभी उसके मन पर जो बोझ पड़ गया थ[ा]
वह पति के प्यार को पाकर हट गया ।

अरे हाँ ! तुम कह रही थी कि कल मेरा जन्म दिन है—वह बोला

मैं चाहती हूँ कल आपका जन्म दिन बड़ी धूमधाम से मनायें । [मैं]
अपनी दो एक सहेलियों को नाचने और गाने के लिए भी राजी कर लि[या]
है—सुधा ने कहा ।

तुम खुद भी तो बहुत अच्छा गाती हो । भाभी कहा करती थीं कि
तुम दूसरी लता मंगेशकर हो—वह बोला ।

सुधा कुछ शरमा गई—मैं भी गा दूंगी । लेकिन हाँ, आपको अपने
दोस्त प्रमोद और राजीव से सितार तथा 'माउथ ऑरगन' बजवाना
पड़ेगा ।

उनके साथ को भी बजाना पड़ेगा—उसने कहा ।

सुधा हँस दी ।

भोजन के उपरान्त दोनों ने निमंत्रित किये जाने वाले मित्रों-सहेलियों

की सूची तैयार की। कार्यक्रम पर भी विमर्श किया। रात को दोनों सोये तो सुधा की आँख जल्दी ही लग गई। वह जागता रहा। जागते हुए उसने सोचा–विवाह के बाद वह पहली बार अपना जन्म-दिन मना रहा है। कल उसके सभी मित्र उसके घर आयेंगे। उसके वे मित्र भी जिन्हें वह एक अर्से से अपने घर आने के लिये टालता रहा है। निश्चय ही उसका एक ही कारण है उसके अपने मन मे छिपा हुआ चोर। उसकी पत्नी का काला रंग। प्रकट में चाहे यह बात कभी उसकी जुबान पर नहीं आई हो पर वह मन ही मन जरूर इस बात से असंतुष्ट रहता है कि उसकी पत्नी काली है। स्वयं उसका रंग गोरा है। वह स्वस्थ भी है पर उसकी पत्नी····। यही कारण है कि विवाह के बाद वह अपनी पत्नी को मुश्किल से चार बार अपने साथ बाहर ले गया है। शुरू मे एक बार सिनेमा। दूसरी बार किन्हीं नजदीक के रिश्तेदारों के यहाँ। एक-एक बार प्रमोद और राजीव के घर। बस, गिनती के चार बार।

वह अपनी पत्नी के सामने स्वयं को जितना व्यस्त दिखाता है दर-असल स्थिति उसके बिल्कुल विपरीत है। ऑफिस में भी उसके पास कोई खास काम नहीं है। वह चाहे तो कई बार जल्दी घर आ सकता है। किन्तु वह जानबूझकर नहीं आता। वह यों ही बिना किसी दिलचस्पी के लाइब्रेरी, पार्क और थियेटरों में घूमता हुआ देर से घर पहुँचता है। सिर्फ इसी वजह से कि कहीं उसकी पत्नी उसे खाली बैठा देख घूमने चलने का आग्रह न कर बैठे। उसने सदा ही इस आग्रह से बचने की कोशिश की है और अपनी खाली जिन्दगी में व्यस्तता का झूठा आवरण चढ़ाकर अपनी पत्नी के साथ-साथ स्वयं को भी धोखा दिया है। निश्चय ही वह अपनी पत्नी के साथ बाहर घूमने फिरने से कतराता है। क्योंकि वह काली है। उसे काली युवती के साथ देखकर अपरिचित भी हँसेंगे–यह विचार कई बार उसे भीरू बनाता है। किन्तु कल····कल उसे इसी काली पत्नी के साथ सटकर बैठना होगा। लोगों से उसका परिचय कराना होगा।

और उसके साथ-साथ हर्ष प्रकट करना होगा।

वह जानता है सुधा एक अच्छे नाक नक्शवाली, कर्तव्यपरायण पतिनिष्ठ और सुशील लड़की है। जब से वह इस घर में आई है तब से उसका घर चमक उठा है। अकेले में कितनी अव्यवस्थित थी उसकी दिनचर्या। सुधा ने कितना परिवर्तन कर दिया है उसमें। समय पर उठना। समय पर चाय नाश्ता। यहा तक कि दतौन और अखबार पढ़ने का भी समय निश्चित कर दिया है। बस जो समय वह घर से बाहर गुजारता है वह उसका अपना है। बाकी समय की नियामक तो सुधा ही है। रात्रि को जब तक वह घर पर नही पहुंचता, सुधा एक कौर अपने मुंह मे नही डालती। गर्मी-सर्दी उसकी सुविधा का ख्याल बराबर रखती है। नहाओ तो पानी तैयार। शेव करो तो सामान तैयार। उसके कपड़े भी सुधा ही धोकर इस्त्री कर देती है। वह पत्नी के रूप मे उसकी सेवा से बहुत खुश है। बेहद प्रसन्न। किन्तु उसका रग…?

वह अक्सर सोचा करता है–उसने शादी के मामले में अपने मां–बाप पर भरोसा करके इस काली युवती को अपने गले बांध लिया। फिर वह खुद ही इस विचार को नकारता है। पर चाहकर भी वह उसके रंग को नही भूल पाता।…

उसके पिता ने तो लिखा था एक बार आकर अपनी होने वाली बहू को देख लो। जरा रंग जरूर पक्का है पर बहुत सुशील लड़की है।

किन्तु एक कर्तव्यपरायण बालक की भाति उसने सब कुछ उन्हीं पर डालते हुए लिखा था–जब आपने लड़की को देख लिया तो समझ लीजिये मैंने भी ही देख लिया।

फिर शहनाइयाँ बजी और उसका विवाह सम्पन्न हो गया। सुहाग रात को जब रेशमी कपड़ों और गहनों में सजे सियाह चेहरे को उसने देखा तो वह एक क्षण के लिए स्तब्ध रह गया। सुधा इतनी काली होगी यह उसने कभी नहीं सोचा था। किन्तु जैसे–तैसे उसने अपने मन को

समझाया। सुधा की मुस्कान में उसके व्यवहार में, शालीनता में उसे बाँधने की पर्याप्त शक्ति थी और उसी के सहारे वह आज तक उसे बांधे हुए है। किन्तु अब… अब… उसका मन… शायद अब… घृणा… कुछ अजीब भावनाओं को संजोये जा रहा है। बहुत से भयानक विचार उसके मस्तिष्क में घर करने लगे हैं।

यही कुछ सोचते हुए उसे ख्याल ही नहीं रहा कि कब उसकी आँख लग गई।

जन्म-दिन की पार्टी मे उसने अपने प्राय: सभी नजदीक के परिचितों को बुलाया था। प्रमोद और राजीव भी तैयार होकर आये।

सुधा ने आज हरी साड़ी पहनी थी। खूबसूरत परिधानो में वह फब रही थी। पहले तो वे दोनों एक साथ खड़े थे फिर सुधा एक ओर अपनी सहेलियों के करीब चली गई। तभी उसके एक मित्र रमेश ने जो अभी अभी आया था, पूछा–भाई योगेश, भाभी कहाँ हैं ? अरे यार, तुम तो जब से ब्याह करके आये हो उन्हें किसी की नजर भी नहीं लगने देते हो। आज देखता हूं उन्हें कैसे छिपाओगे ?

अरे, इसमें छिपाने की कौनसी बात है। देखो और मिलो। वो कोने में खड़ी है–योगेश ने एक दूसरे युवक से बात करते हुए कहा।

वही जो गुलाबी साड़ी पहने खड़ी है–बालों पर फूल लगाये। भई छिपे रुस्तम निकले। सच कहता हूं। इतनी खूबसूरत पत्नी मैं खुद पाता तो मैं भी तुम्हारी तरह किसी की नजर नहीं पड़ने देता।

योगेश ने देखा कि रमेश, सुधा की सहेली को उसकी पत्नी समझ बैठा है। उसने उसे सचेत करते हुए कहा-अरे नहीं, भई तुम्हें गलत फहमी हुई है। मेरी पत्नी ने तो हरी साड़ी पहन रखी है।

वह काली सी… कहते हुए रमेश जैसे रुक गया–क्षमा करना मैं अभी आया–और वह उसकी पत्नी की ओर बढ़ गया।

योगेश ने सुना तो उसे बहुत ठेस लगी ! काश। उसकी पत्नी काली

न होती। तभी उसने कुछ सुना। पास ही एक युवती प्रमोद से योगेश जी की पत्नी इतनी काली हैं। क्या इनकी शादी कि वजह से हुई है?

नहीं, नहीं ऐसी तो कोई बात नहीं—प्रमोद उसे समझाने कर रहा था।

योगेश वहाँ से हट गया। उसका मन कुछ मिनलाने भी उसने अपने को सम्भाले रक्खा, और पार्टी में आये लोग बोलता रहा।

पार्टी की शाम बड़ी रंगीन गुजरी। सुधा की सहे नृत्य-गीत। स्वयं सुधा के कंठ से निकला सुमधुर गीत-मधुर मना, मधुर मधुर गा ···श्रोताओं और दर्शकों को खूब रुचे। और राजीव ने सितार और 'माउथ ऑरगन' बजाकर लोगों व लिया। सभी ने सुधा के गले की तारीफ की। पर किसी ने योगेश को मुबारकबाद नहीं दी कि उसे कोयल से कंठवाली, मिली है। सभी ने आगे पीछे यही कहा—भई, योगेश जी की प तो बहुत काला है। यह जोड़ा तो कुछ जंचा नहीं।

पार्टी समाप्त हो गई। पर योगेश के मन में सुधा के रंग क यहाँ से वहां तक पैठ गया। वह मन ही मन घुलने लगा। बाद वह पहले से भी अधिक गम्भीर रहने लगा।

पार्टी में सुधा के रंग को लेकर कही गई बातें स्वयं सुध में भी पड़ी थीं। किन्तु वह क्या करती। उसने कई बार अ दूसरी ओर करने की चेष्टा की पर यही बात रह-रहकर उसके में गूंजती-वह काली है। उसका रंग काला है। उसके पति का है। उसकी और योगेश की जोड़ी····कितना अजीब संयोग है।

अपने काले रंग के प्रति अत्यन्त होकर सुधा अपने पी

तो उसके पास अपनी निष्ठा और विश्वास हो था, जिसे उसने कभी भी डिगने नही दिया था। किन्तु फिर भी आये दिन कोई न कोई ऐसी घटना घट जाती जिससे उसके मन को भारी ठेस पहुचती।

एक दिन शाम के समय योगेश के एक पुराने मित्र मिस्टर खन्ना आये। चाय-नाश्ता के बाद लौटते समय द्वार पर योगेश से कह रहे थे-दोस्त, यह शादी क्या तुम्हारी अपनी मर्जी से हुई है या ...

नही यार, अब फंस गए सो तो फँस ही गए।—और फिर बात बदलते हुए योगेश ने कहा—दोस्त, मेरी पत्नी काली जरूर है पर घर के काम-काज में किसी से पीछे नही। रूप रंग को क्या चाटना है? अपने राम को तो पत्नी चाहिये थी, सो मिल गई।

योगेश ने बड़ी सावधानी के साथ ये शब्द कहे थे पर सुधा ने उन्हे सुन लिया था। यार फंस गए सो तो फंस ही गए...आज पहली बार सुधा के मन को भारी ठेस पहुंची। वह अपने आपको सम्भाल नहीं सकी और वहीं गिरकर बेहोश हो गई।

उस दिन के बाद सुधा की तबीयत दिन-ब-दिन बिगड़ती ही गई। डॉक्टर की दवा से कुछ समय के लिये आराम होता पर उसके कोमल मन पर जो घाव बन गया था वह तो रिसता ही गया। अनेक भयावने और घृणास्पद विचार उसके मस्तिष्क मे मंडराते रहते। कभी-कभी वह सोचती। अच्छा होता उसे उसके माँ-बाप किसी काले-कलूटे आदमी के साथ बाँध देते। कम से कम वहाँ ऐसी बातें तो सुनने को नही मिलती। भगवान! तूने मुझे गोरा और सुन्दर पति देकर अच्छा नहीं किया। यहाँ तो मेरा अस्तित्व इसके कदमों को भी चूमने का अधिकारी नहीं है। मैं क्या करूँ कहाँ जाऊँ?

सुधा न अपने विचारों को थाम सकी और न अपने शरीर को सम्भाल सकी। योगेश की अपने प्रति बढती हुई बेरुखी को कम करने की सामर्थ्य भी अब उसमे शेष नहीं थी। इसकी काया थक चुकी थी। उसका मन हा

चुरा था। अब वह बराबर बिस्तर पर पड़ी रहती और पागलों की तरह एकटक देखती रहती।

दो महीने की लम्बी बीमारी के बाद सुधा एक दिन हमेशा के लिए यह संसार छोड़कर विदा हो गई। उसकी आत्मा ने शायद उसी दिन चैन पाया होगा जब इस संसार से उसके सारे रिश्ते टूट गए थे।

योगेश एक निष्ठावान, कर्तव्यपरायण, सुशील पत्नी को खोकर बहुत पछताया। बहुत रोया।

समय के अंतराल के बाद एक अवसर फिर आया जब योगेश को अपने लिए पत्नी का चुनाव करना था। इस बार वह बहुत सतर्क था। अत्यन्त सजग। उसने निश्चय किया था कि अब वह जो भी पत्नी लायेगा वह काली नहीं होगी और न ही उसका चुनाव उसके माता-पिता करेंगे। इस बार अपनी पत्नी के चुनाव में उसने अपने उन मित्रों की राय ली थी जिन्होंने सुधा के रंग को देखकर नाक-भौंह चढ़ाई थी।

इस चुनाव में योगेश को अधिक दिन नहीं लगे और अपने एक मित्र की सहायता से उसका रिश्ता एक खूबसूरत, सुन्दर, पढ़ी-लिखी लड़की वीणा से तय हो गया। निश्चय ही उसका रंग सुधा के रंग से बिल्कुल विपरीत गोरा और निखरा हुआ था। उसकी नई पत्नी घर आई तो योगेश को लगा जैसे एक अर्से से बिखरे इस उपवन में फिर से बहार आ गई हो।

अब वह अपनी नई पत्नी के साथ सिनेमा भी देखता। पार्क में घूमने भी जाता और मित्रों तथा रिश्तेदारों के यहाँ भी हो आता था। वे सभी उसकी नई पसन्द की दाद देते और योगेश और वीणा की जोड़ी की तारीफ करते।

किन्तु कुछ ही दिनों में योगेश को एहसास होने लगा कि एक सच्ची गृहस्थी और मन की शांति इस बात पर निर्भर नहीं करती कि पति-पत्नी का रंग रूप कैसा है। उसने इसी बीच कई बार ऐसा अनुभव किया कि वे दोनों खूबसूरत अवश्य हैं। पर सुखी हैं-इसमें सन्देह है।

और यह सन्देह दिनों दिन विश्वास मे बदलने लगा उसकी नई पत्नी वीणा को अपने रिश्तेदारों, सहेलियों और शौकों से भी फुर्सत नही मिलती थी। वह दफ्तर से लौटता तो पड़ोस से पता चलता कि आज वीणा शापिंग को गई है। आज वीणा को सिलाई शिक्षण केन्द्र मे देर हो गई। आज उसके बम्बई के रिश्तेदार आ गए सो मैके ही रहेगी आदि।

और जब वह घर में रहती तो हर बार तबियत खराब होने का बहाना बनाकर होटल में भोजन करने का प्रस्ताव करती। वीणा के व्यक्तिगत खर्च का हिसाब भी वह देखता तो दंग रह जाता। वह बहुत परेशान हो जाता।

वीणा न खुद वक्त पर उठती न योगेश को जगाती। चाय-नाश्ते के वक्त कभी शक्कर के अभाव की शिकायत करती तो कभी पत्ती की। कुछ ही महीनों मे योगेश को लगने लगा जैसे उसका घर जहन्नुम बनता जा रहा है।

उसे कई बार ऐसा भी लगा कि वीणा की दिलचस्पी उसमें कम है और उसके पीहर की ओर से मिलने आने वाले लोगों में अधिक। वह तड़पकर रह जाता। पर कुछ कह नही पाता।

और तो और उसने वीणा के होठों पर एक अर्से से मुस्कान नहीं देखी थी। वह किसी एक दिन भी उसकी प्रतीक्षा मे द्वार पर नहीं मिली।

एक दिन दफ्तर में किसी बात पर उसका झगड़ा हो गया। योगेश का मूड वैसे ही खराब था। घर आया तो घर में ताला बंद था। पता चला कि वीणा मेटिनी शो देखने गई है। योगेश दाँत पीसकर, मन मसोस कर रह गया। खुद ही चाय बनाई और पीकर एक कुर्सी मे बैठ गया। उसे आज वीणा पर बेहद गुस्सा आ रहा था।

रात के कोई आठ बजे वीणा लौटी और बड़ी ही नाजुक मिजाजी से उसके करीब आकर खड़ी हो गई-हलो! कब आए-वह बोली।

मैं कभी भी आया होऊँ। तुम अपनी कहो। मेटिनी शो तो छह बजे ही

खत्म हो जाता है। दो घटे किसके साथ घूमती रहीं—योगेश गुस्से से तमतमा रहा था।

क्या कहते हो ? आज तुमने भाग तो नहीं पी रखी। वीणा ने छूटते ही उत्तर दिया।

भांग पी रखी थी अब तक। अब बिल्कुल होश में बोल रहा हूँ—तुम अपना रवैया बदलोगी या इसी तरह घर से लापरवाह बनी रहोगी—योगेश ने जैसे उसे चेतावनी दी।

अपनी जुबान को काबू में रखो। ख्याल तो तुम्हें मेरा रखना चाहिये वरना मुझे अकेले बाहर जाने की जरूरत ही क्यों पड़े—वीणा की गर्दन तन गई थी और उसकी आंखों में गुस्सा उत्तर आया था।

जब तुम्हें शादी के बाद भी रंगरेलियां करनी थीं तो मेरे घर को रक क्यों बनाया ?

नरक ? मत भूलो, मेरे आने से ही यह मुवहाखाना स्वर्ग बना है। र जैसे विधुर से शादी करके मैंने तुम पर एहसान किया है। तुम्हें इस ा का ख्याल हरदम रखना चाहिये—वीणा ने बेशर्मी से उत्तर दिया।

क्या बकती है बेशर्म —कहते हुए योगेश का हाथ उस पर उठने को पर जाने क्या सोचकर वह रुक गया।

वीणा उसे नकारती हुई दूसरे कमरे में चली गई।

उस शाम योगेश ने खाना नहीं खाया और न वीणा ने। योगेश को भर नींद नहीं आ सकी। वह देर तक विचारों में ही खोया रहा। विचारों में खोये एक आकृति रातभर उसके मस्तिष्क में उभरती यह आकृति थी सुधा की। उसकी काली पत्नी की। वह सोच सुधा की जगह उसे वीणा कैसे मिल गई ? वीणा खूबसूरत है पर नहीं है। सुधा काली थी पर पत्नी थी। एक आदर्श पत्नी ! ❖

कहानी और यथार्थ

आशुतोष ने एक बार अपने चेहरे को शीशे में देखा और अपनी हल्की सी दाढ़ी पर हाथ फेरता हुआ मन ही मन मुस्कुरा दिया। कुछ देर पहले उसने अपने चेहरे पर बढ़ी हुई दाढ़ी को देखा था, तो शेव कर लेने का विचार उसके मस्तिष्क में आया था किन्तु फिर यह सोचकर कि आज उसे अपने कई मित्रों पत्रकारों, सम्पादकों से भेंट करनी है, उसने इस विचार को त्याग दिया। आज उसने अपनी जुल्फों और घने बालों को भी ठीक तरह से नहीं संवारा और उन्हें अव्यवस्थित ढंग से ही बिखरा रहने दिया। आशुतोष एक लेखक था और उसके विचार में प्रत्येक लेखक को कम से कम ऐसे वेश में रहना चाहिये जिससे लोग उसमें और साधारण आदमी में अन्तर कर सकें।

उसका विचार था कि लेखक संसार का एक विशिष्ट प्राणी होता है। उसका रहन सहन, वेशभूषा सब कुछ अलग होनी चाहिए, पजामा कुर्त्ता अथवा धोती कुर्त्ता-खद्दर का हो तो ज्यादा अच्छा है। बढ़े हुए बाल, चेहरे पर हल्की सी दाढ़ी, सादी चप्पलें और हाथ में एक चमड़े का हैंडबैग [चाहे वह भेंट स्वरूप प्राप्त किया गया हो] यह है आधुनिक लेखक का वेश। यों हम अपना व्यक्तिगत जीवन चाहे कितना ही व्यवस्थित क्यों न गुजारें किन्तु लोगों को प्रभावित करने और उन पर अपने व्यक्तित्व की छाप लगाने के लिए यह सब दिखावा बहुत है। खासकर उस जैसे बुद्धिजीवी लेखक के लिए बहुत आवश्यक।

उसे याद है—जब उसने सबसे पहले कहानी लिखनी शुरू की थी, उसी के एक अंतरंग मित्र ने *कहा था-भैया कहानी लिखने के लिए कलम*

एक मुस्कुराहट कल की

उठाने से पहले एक लेखक की तरह व्यवहार करना, उठना-बैठना और चलना तथा बोलना सीखो ।

उस दिन आशुतोष ने उसकी बात को एक मजाक समझकर टाल दिया था । किन्तु आज वह अनुभव कर रहा था कि सचमुच उसके मित्र ने कितनी गहरी बात कही थी । आज की दुनियाँ में साहित्य-सृजन करने से पहले साहित्यकार का वेश बनाना कितना आवश्यक है । लेखन से अधिक दिखावे की जरूरत है । तभी हम सफल लेखक कहला सकते हैं । आज वह लेखन के क्षेत्र में ऐसी बहुत सी सीढ़ियाँ तय करके बहुत आगे बढ़ आया था । देश के प्रसिद्ध लेखकों में अब सम्मान के साथ उसका नाम लिया जाता था । किन्तु जाने क्यों उसके अन्तर में एक टीस, एक कसक बहुत गहरे तक पैठ गई थी जो उसे बार बार कचोटती थी, सालती थी और झकझोरती थी । कई बार वह आत्मविवेचन करने लगता । मन
न पूछा करता-सच कहो आशुतोष, आज तुम जो कुछ हो, क्या उ
ही अर्थों में अधिकारी हो ? जो सम्मान तुम्हें आज मिल रहा है, क
हमारी पिछली पीढ़ी के लेखक सैकड़ों ग्रन्थ लिखने के बाद भी प्राप्त क
सके हैं ? शायद नहीं । फिर यह नाटक क्यों रच रहे हो ? यह बनावट, यह दिखावा कैसा ? लेकिन कुछ क्षणों में जैसे वह सोते से जाग उठा और उसे लगा जैसे वह कोई स्वर्ण की धार खोज गया है । वह इन सब बातों के लिए भविष्य में सोचने का समय निर्धारित करके अपने काम में लग गया ।

आज उसे कई लोगों से मिलना है । कई जगहों पर जाना है । आज शृंगार कर वह बाबू नहीं बनना चाहता । दाढ़ी बनाकर वह अपने व्यक्तित्व का प्रभाव कम नहीं करना चाहता । वह आज पैंट-बुशर्ट नहीं अपनी खद्दर की धोती-कुर्ता पहनेगा । उसकी आँखों में नम्बरी चश्मा नहीं लगता । वह धूप का चश्मा ही लगा लेगा । उसके हैंडबैग की चैन लगभग टूट रही है । उसकी रिपेयर वह बाद में किसी दिन करा लेगा । आज यूँ ही सही ।

सड़क पर चले तो कम से कम लोगों को ऐसा लगे कि कोई लेखक गुजर रहा है अन्यथा आज लोगों की तरह बालों को संवार कर, कपड़ों को व्यवस्थित ढंग से पहनकर बाहर निकलेगा तो कौन उसे लेखक कहेगा ! सभी उसे बाबू समझकर एक उपेक्षा भरी दृष्टि से देखेंगे और पलभर में वहीं और केन्द्रित कर लेंगे।

यह ड्राईंग रूम में आया तो टेलीफोन की घंटी टनटना उठी। एक सुप्रसिद्ध मासिक पत्रिका के प्रधान सम्पादक सत्यदेव जी अपने कार्यालय से बोल रहे थे। औपचारिक नमस्ते आदि करने के बाद वे बोले—मैंने पहले भी फोन किया था किन्तु शायद आप कहीं बाहर गए हुए थे।

जी हाँ, दोनों ही बार सब्जी लाने चला गया—आशुतोष ने यह बात काफी गंभीरता से कही जैसे यह सम्पादक जी का दोष हो कि वह सब्जी लाने गया तभी उनका फोन आया।

खैर, क्षमा कीजिए। आपको याद दिलाना चाहता था कि आज महीने की पच्चीस तारीख हो चुकी है। आपके लेख की अगली किश्त अब तक प्राप्त नहीं हुई है। देखिये अगले महीने के अंक का सारा मैटर छप चुका है बस, आप ही के लेख की प्रतीक्षा है। कृपया आज ही भिजवा दें, तो अच्छा हो। अन्यथा पहली तारीख को अंक निकलना कठिन हो जायेगा। और हाँ, आपको यह तो स्मरण ही है कि इस किश्त का पारिश्रमिक आपको एडवांस भिजवा दिया था। देखिये, लेख आज अवश्य भिजवा दीजिये। आप तो जानते हैं कि पाठक हमारे मासिक पत्र का कितनी बेचैनी से इन्तजार करते हैं।

जानता हूँ भाई सत्यदेव जी, किन्तु मैं भी क्या करता ? पिछले दिनों कई बार बैठा। किन्तु मूड ही नहीं बैठा। आज लिखने की कोशिश करूंगा। कहकर आशुतोष ने लापरवाही के साथ फोन बंद कर दिया।

आशुतोष जानता था कि आरम्भ में जब उसने पर्याप्त लगन और

नाराजगी ? भला आपसे ? मैं आपका मतलब नही समझा ? जरा बात को खोलकर कहिये—आशुतोष ने कहा ।

नाराजगी नही होती तो आप हमारे विरोधी प्रकाशकों को पुस्तक छापने के अधिकार नही देते । सुना है आपका नया उपन्यास जो साप्ताहिक 'युग' में धारावाहिक रूप से छपा था, अब अलंकार प्रकाशन वाले छाप रहे हैं—कहते हुए नित्यानंद जी ने गदराई हुई आँखों से आशुतोष की ओर ताका ।

आशुतोष के होंठों पर किंचित मुस्कुराहट खेल गई । बोला—मैं आपका आशय समझ गया । किन्तु यदि आप मेरी जगह पर होते तो आप भी कदाचित् ऐसा ही करते । आप तो जानते हैं, आज का युग कम्पीटीशन का युग है । जो अधिक गति से दौड़ेगा, वही जिन्दगी की होड में आगे बढ़ जायेगा । अलंकार प्रकाशन वालो को प्रकाशकों मे अपना स्थान बनाना है और उनके लिए आवश्यक है कि वे चोटी के लेखकों का साहित्य प्रकाशित करें । जब मुझे उन्होंने तीस प्रतिशत रायल्टी आफर की तो मजबूरन मुझे उपन्यास का प्रकाशन अधिकार उन्हें देना पड़ा ।

लेकिन यह हमारी भी प्रेस्टीज का सवाल है । हम भी देश के प्रमुख लेखकों की रचनाएं अन्यत्र प्रकाशित नही होने देना चाहते, चाहे हमें कितनी भी रायल्टी क्यों न देनी पड़े । वादा कीजिये, भविष्य में आपकी सभी पुस्तकों का प्रकाशन हमारे यहाँ से होगा—वे बोले ।

अच्छा वादा करता हूँ—आशुतोष ने कहा और दोनो एक दूसरे की ओर देखकर मुस्कुरा दिए ।

नित्यानंद जी चले गए तो आशुतोष अपने तीर को निशाने पर लगा देखकर मन ही मन खिल उठा । दोपहर हो चली थी । आशुतोष ने घर से बाहर जाने से पूर्व आज की डाक देख लेने का इरादा किया । डाक मे कुल सात पत्र थे । एक लिफाफे में धन्यवाद के शब्दों के साथ चैक द्वारा

उसकी रचना का पारिश्रमिक भेजा गया था। दूसरे लिफाफे में स्थानीय आकाशवाणी केन्द्र से कोई कहानी लिखने के लिए अनुबन्ध का कागज था। तीसरा पत्र किसी प्रसिद्ध साप्ताहिक पत्र के कार्यालय से था जिसमें उसकी कहानी की स्वीकृति की सूचना थी। शेष चार पत्रों में दो मासिक पत्रों और दो साप्ताहिक पत्रों का रचना भेजने का अनुरोध था।

पिछले कई दिनों से आशुतोष ने कोई नई रचना नहीं लिखी थी। सुबह से ही उसका ऐसा इरादा था। किन्तु इससे पहले वह अपने मित्रों से की जाने वाली भेंट का दौर समाप्त कर लेना चाहता था। पत्रों को 'बैग' में डाला और अपने स्कूटर पर बैठकर वह बाहर चल दिया।

शाम तक वह अपने सभी कार्यों से निवृत होकर लौट आया। घर आया तो पता चला कि स्थानीय दैनिक पत्र के सम्पादक श्री मिश्रा उसे अपने घर पर रात के भोजन के लिए आग्रहपूर्वक निमंत्रित कर गए हैं। वह कुछ क्षणों तक रुका और मिश्रा जी के घर पहुँच गया। वहाँ पर पहले से ही अनेक-पत्रकारों और सम्पादकों का जमघट था। मिश्राजी ने अपने बंगले के बाहर लान पर बड़े शानदार 'डिनर' का आयोजन किया था। कुछ सम्भ्रान्त परिवारों के युवक-युवतियाँ भी वहाँ मौजूद थीं।

पहले सभी को लेमन, कोकाकोला आदि सर्व किया गया। फिर अत्यधिक मूल्य वाली व्हिस्की के प्याले दिये गए। आशुतोष ने मिश्रा जी के करीब बैठकर लगभग आधी बोतल पी डाली और जब नशे में झूमने सा लगा तो जल्दी-जल्दी भोजन करके घर लौट आया। रात के ग्यारह बजे के करीब उसे लगा जैसे उसका नशा कुछ कम हो गया है और वह अब प्राय होश में है। तभी उसे याद आया कि उसे आज एक कहानी लिखना है। शीघ्र ही उसका मूड भी हो आया। कलम उठाई और पृष्ठों पर पृष्ठ भरने लगा। यह एक ऐसे लेखक की कहानी थी, जो दिन रात जिन्दगी के तूफानी थपेड़ों से जूझता हुआ अपने साहित्य सृजन में लगा है।

रचनाएँ युग की प्रतिनिधि रचनाएँ हैं किन्तु उनको प्रकाशित करने वाला कोई नहीं। एक ओर जहाँ उसका जीवन अभावग्रस्त है वहाँ दूसरी ओर वह सामाजिक रूढ़ियों का शिकार है। दहेज के बिना उसकी इकलौती जवान और खूबसूरत बहिन से कोई शादी करने को तैयार नहीं होता। उसकी बूढ़ी और कमजोर माँ दवा के अभाव में परलोक सिधार जाती है और अन्त में लेखक को इस संसार से घृणा हो जाती है। वह अपनी सम्पूर्ण कृतियों को जला डालता है और स्वयं कुए में कूदकर आत्महत्या कर लेता है.........।

❖

अंधेरी रात के सन्नाटे में उसके पाँव होले-होले उठ रहे
कमरों की छानबीन के बाद वह जैसे ही तीसरे कमरे में घु
उसे लगा जैसे गैलरी में से कोई उसकी ओर बढ़ता हुआ आ रहा
ज़रा ठिठका। गैलरी में दूर तक नजर दौड़ाई। अन्धेरा ही अ
उसे कुछ नजर नहीं आया। कुछ ही क्षणों बाद फिर आहट हुई।
फर्श पर रेंगती हुई कोई चीज उसके करीब आ रही है। उसने दे
थोड़ी दूर पर कोई सफेद आकृति उसकी ओर धीरे धीरे बढ़ती आ
उसने टार्च जलाई। एक अपंग युवक पहियेदार कुर्सी को लुढ़काता
करीब आगया। उसे अपने पास आया देख, उसने टार्च के
पिस्तौल हाथ में लेकर तान ली।

कौन हो तुम ? इस अन्धेरी रात में चोरों की तरह क्यों
अपंग युवक ने छूटते ही पूछा।

वह एक क्षण चुप रहा। फिर बोला—तुम्हें धोखा हुआ है।
नहीं। डाकू हूँ। जोरा डाकू का नाम सुना है तुमने ?

वही जिसने सारे इलाके में लूट मार मचा रखी है। लोगों

जान और माल का दुश्मन जरूर हूँ, पर माँ-बहिनों की इज्जत लूटना मेरा काम नहीं।

गरीब और दीन-दुखियों का सहारा भले ही छिन जाय—अपंग युवक थोड़ा सा मुस्कुराया।

अपनी जिन्दगी चाहते हो तो फौरन यहाँ से चले जाओ, वरना पिस्तौल की एक ही गोली तुम्हारा काम तमाम कर देगी—जोरा का स्वर थोड़ा उत्तेजित हो गया था।

युवक पीछे हटने या मुड़ने की अपेक्षा उसके और अधिक करीब आ गया और बोला—मैं तुमको अपंग और लूले-लंगड़े लोगों की पूँजी नहीं लूटने दूँगा।

क्या बकते हो ? क्या यह सेठ दीवानचन्द की हवेली नहीं है ?

है। लेकिन·······

लेकिन क्या ? ······ तुम मेरे रास्ते में दीवार बनने की चेष्टा मत करो। वरना इसका एक ही अंजाम होगा, तुम्हारी मौत !

जिसने आज तक जिन्दगी के सच्चे सुख को नहीं जाना, भला वह मौत से क्या डरेगा ?—अपंग युवक ने डाकू की ओर अपना हाथ बढ़ाया।

तभी अन्धेरे को चीरती हुई टार्च की लाल रोशनी गैलरी में चमकी और सीटी की हल्की सी आवाज सुनाई दी। जोरा थोड़ा घबराया। उसने सोचा, शायद कोई खतरा उपस्थित हो गया है लाल रोशनी की चमक और फिर हल्की सीटी की आवाज। ये हवेली के बाहर खड़े उसके साथियों के संकेत थे। उसने सोचा उसे जल्द ही अपना काम करके बिल्डिंग के बाहर हो जाना चाहिए। वह सम्भला और अपनी कमर में बन्धे कपड़े से अपंग युवक का मुँह बांधने की चेष्टा करने लगा। युवक बहुत कर

मसाया और जोरा से संघर्ष करता रहा। वह बीच-बीच में कुछ शब्द भी बोल देता था जैसे—याद रखना बहुत पछताओगे यह सेठ दीवानचन्द—अन्धों और अपंगों की पूंजी—आदि।

जोरा ने देखा कि युवक अपनी पूरी शक्ति के साथ मुंह बांधे जाने का विरोध कर रहा है। हो सकता है यह अभी जोर से चिल्ला कर सभी को जगा दे और शहर के बीच की इस बिल्डिंग से निकल भागना उसके और उसके साथियों के लिए अत्यन्त कठिन हो जाय। उसने आव देखा न ताव। अपने हाथ में पिस्तौल लेकर उसके घोड़े पर जोर दिया और कहा—तुम चुप रहोगे या मरना चाहते हो?

यहाँ से धन लेकर निकलने से पहले तुम्हें मेरी लाश पर से गुजरना होगा—अपंग युवक ने कहा।

धांय! धांय!! जोरा ने अपनी पिस्तौल से अपंग की छाती पर एक दम करीब से दो फायर किये। युवक अचेत होकर कुर्सी पर ढेर हो गया। जोरा तीसरे कमरे में गया। यहाँ एक ओर तिजोरी रखी हुई थी। उसे तुरन्त तोड़ा और तिजोरी में पड़े लगभग बारह हजार रुपयों को अपनी कमर में बाँधकर कमरे के बाहर आ गया। उसका एक हाथ रुपयों पर था और दूसरा पिस्तौल पर।

बाहर आकर उसने देखा—लगभग सभी कमरों की बत्तियाँ जल गई हैं। पड़ोस की बिल्डिंगों से भी लोग झाँक झाँककर उसकी ओर देख रहे हैं।

धांय! तभी बिल्डिंग से कुछ दूरी पर बनी दीवार के करीब से एक गोली चली और तीर की तरह जोरा के करीब से निकल गयी। उसने जवाब में गोली चलाई। कुछ क्षणों तक वातावरण में शांति रही। जोरा को वस्तु-स्थिति समझने में देर नहीं लगी। शायद उनके डाके की पुलिस को खबर लग गई है। उसका अब सरलता से भाग निकलना सम्भव नहीं।

उसने गैलरी में नजर दौड़ाई। युवक की लाश कुर्सी पर पड़ी थी। उसका सर झुका हुआ था और आँखें उसी की ओर घूर रही थी। उसे थोड़ा सा भय अनुभव हुआ। गैलरी में बाहर की रोशनी से हल्का सा प्रकाश आ रहा था। वह तेजी के साथ गैलरी में दौड़ा। उसके बढ़ते कदम के साथ ही बाहर से दो तीन गोलियाँ फिर चलीं। वह रुका नही और गैलरी से निकल कर बिल्डिंग की बांयी ओर के बरामदे मे आ गया। कुछ देर बिल्डिंग से बाहर निकल भागने की युक्ति सोचता रहा। गैलरी की ओर जब लोगों का शोर शुरू हो गया था। जोरा को थोड़ा पसीना आने लगा।

कुछ क्षणों बाद इधर भी गोलियों का आदान-प्रदान हुआ। जोरा पुलिस द्वारा चारों ओर से घिर गया था। वह हताश और निराश हो चला। थोड़ी देर और गोलियाँ चलती रहीं। फिर उसके करीब से आवाज आई—डाकू जोरावर, तुमको पुलिस ने चारों ओर से घेर लिया है। अब तुम उसके चंगुल से बचकर किसी भी तरह नही निकल सकते। अपनी जान की खैर करो और सारे हथियार डालकर अपने आपको पुलिस के हवाले कर दो।

पुलिस के हवाले कर दो! —डाकू जोरा ने मन ही मन हिकारत से कहा और चीख! एक गोली दागी। जैसे ही दूसरी गोली चलाने को उसने घोड़े को दबाया सिट्ट की आवाज हुई। उसकी कोशिश असफल रही। उसने देखा अब उसके पास अपनी रक्षा के लिए गोली भी शेष नही है। थोड़ी ही देर में पुलिस की ओर गोलियाँ चलीं और एक गोली उसके दांए हाथ में लगी। वह अचेत हो गया। तभी पुलिस के तीन चार जवानों ने आकर उसे गिरफ्तार कर लिया। उसके हाथ से खून लगातार बह रहा था। अपनी कमर मे बंधे रुपयों को सम्भाले रखने की हिम्मत अब उसमें शेष नही थी।

ऽ आधार पर न्यायालय ने उसे मृत्यु दण्ड सुना दिया।

जोरा जानता था–एक दिन उसके जीवन का यही अन्त होगा–गोली या फांसी! उसे इन दोनों में से एक को अपने गले लगाना होगा। आज र क्षण उसकी आँखों के सामने फाँसी का फन्दा झूल रहा था। अपना परापी जीवन शुरू करते हुए एक दिन उसने अपनी माँ से कहा था— ां, क्यों तूने मुझे इस नरक में डाल दिया? मैं जैसे-जैसे अपराध करता हूँ, इका जहर मेरे तन बदन पर और तेजी से उतरने लगता है और मुझे रावर अपराध करने के लिए प्रेरित करता है। लोगों की जानें लेना और ट-खसोट करना मेरे लिए नशा हो चला है माँ! मैं क्या करूँ? कहाँ ाऊँ? अब इस नरक से निकल भी तो नहीं सकता। निकलता हूँ तो लेस के लोग मुझे कुत्ते की मौत मार देंगे।

उसे याद है, माँ ने उसकी इस बात का कोई उत्तर नहीं दिया था। जोरा के किसी भी ऐसे विचार से कभी सहमत नहीं होती थी जो उसे नारकीय जिन्दगी से त्राण देने वाली होती। जोरा ने बहुत बार नुभव किया था। उसके ये विचार सुनते-सुनते माँ की आँखों में कई बार सू छलक आते थे। किन्तु शीघ्र ही जाने किस अपराध भावना के वशी- त होते फिर वाते कि यह अपने मन को कड़ा करके सदा यही कहती— तें बेटा नहीं? पाप-पुण्य कुछ नहीं है इस धरती में। ये महलों में बसने र रईस और अमीर लोग क्या किसी दुखिया की पुकार सुनते हैं। किस ा का सहारा बनते हैं?—और चुप हो जाती जैसे उसके पाप की तीनों रे एक साथ देखती हों।

स्वयं जोरा अपराध की राह में बढ़ते हुए भी गरीब और बेसहारा ों को सताने से बचने की चेष्टा करता था। किन्तु उसका यह पेशा ही

ऐसा था। उसको हर बार ऐसा लगता जैसे उसने एक नही, सैकड़ो निरपराधों को सताया है और वे सभी उसकी ओर देखकर जोर से हँस रहे है, अट्टहास कर रहे हैं। बहुत से चेहरे उसकी ओर बढ़ते और वह आँखें बन्द करके उनसे बचने की चेष्टा करता।

आज जोरा के सामने सिर्फ उस अपंग युवक का चेहरा था, जिसने उसे अन्तिम बार अपराध करने से रोका था। कोर्ट मे पहुँचने पर जोरा को पता चला था कि वह बिल्डिंग सेठ दीवानचन्द की अवश्य थी पर वहाँ सेठ स्वयं नही रहता था। बल्कि उसने अन्धे और अपंग लोगों के लिए एक कल्याण केन्द्र खोल रक्खा था। तिजोरी तोड़कर जो बारह हजार रुपये उसने निकाले थे वे रुपये उसी कल्याण केन्द्र की पूँजी थी। जब उसने यह सब कुछ जाना तो उसका मन घृणा से भरने लगा। उसे पहली बार अपने कुकृत्य पर इतना पछतावा हुआ था। उसकी आत्मा ने धिक्कारा। पर अब क्या हो सकता था? पानी सर से गुजर चुका था। उसे याद आया। अपंग युवक ने कहा था—तुम्हें अन्धे और लूले लंगड़ों की पूँजी नही लूटने दूँगा""""बहुत""""बहुत पछताओगे"""" अन्धे, अपंग""""और उसी बेसहारा को उसने सदा के लिए मौत की नींद सुला दिया"""" उसे अपने पाप की सजा मिलनी ही चाहिए""""वह अपने जीवन का अन्त करके भी इतने अपराधों का बदला नही दे सकता। उसकी जान ले लेने से तो किसी एक बेसहारा को भी राहत नही मिलेगी। हे भगवान! तूने मुझे डाकू क्यों बनाया? अपराध के गर्त में क्यों प्रवृत्त किया? यहाँ तो मैं अपने पाप का प्रायश्चित भी नहीं कर सकता। मैं क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? उसे उसकी आत्मा की आवाज बराबर झकझोर रही थी।

जोरा के भाग्य का निर्णय हो चुका था। दो दिन बाद उसे फाँसी के फन्दे पर लटका दिया जायेगा। बहुत सी जानों के बदले मे एक जान ले ली जायेगी। फाँसी पर झूलने से पहले उससे पूछा गया—तुम्हारी अन्तिम इच्छा क्या है?

जोरा ने हंसकर कहा था—जीते जी इच्छाओं का अन्त नहीं होता। सुना है अब तो एक आदमी की आँखें दूसरे आदमी की आँखों में भी लगाई जा सकती हैं। मुझ पर एक दया कीजिए। मेरी ये दोनों आँखें किसी अंधे की आँखों में लगा दीजिए। मैं इस संसार से तर जाऊँगा साहब। तर जाऊँगा।

उसकी आँखों में आँसू थे और मन में प्रायश्चित का भाव। ❖

हार-जीत

अपने व्यापार से फुर्सत पाकर सेठ किशोरीलाल इस बार जब अपने शहर आए तो किसी भले आदमी ने उन्हें राय दी कि वे इस बार राज्य विधान सभा के लिए शीघ्र ही होने वाले चुनावों में खड़े हो जावें। किशोरी लाल को यद्यपि राजनीति से हल्की सी दिलचस्पी थी और एक उद्योगपति होने के नाते वे ऐसा आवश्यक भी समझते थे तथापि चुनाव मे खड़े होने की बात सुनकर उन्होंने सामाजिक प्रतिष्ठा का दरवाजा अपने लिए सपाट खुलता हुआ देखा और शीघ्र ही इस राय को मान भी लिया। किन्तु महज राय मान लेने से वे विधान सभा के सदस्य तो नही बन सकते थे। अत: उन्होंने अपने साथियों और परिचितों तथा भाड़े के लोगो द्वारा अपनी इस इच्छा को प्रचारित करवाना शुरू किया। कुछ ही दिनों मे उनके गिर्द लोगों की भीड़ होना शुरू हो गई। सुबह होते ही वे अपनी हवेली की बैठक मे अपनी गद्दी पर आसीन हो जाते और आने-जाने वाले बड़े और छोटे सभी तबके के लोगों से केवल एक ही बात पूछते क्यों भाई, विधान सभा की सदस्यता के लिए मैं चुनावों में जीत जाऊंगा न? मुझे आप लोगों के वोट मिल जायेंगे न? और सुनने वाले उन्हे उनकी सुनिश्चित विजय का विश्वास दिलाते। ऐसा विश्वास दिला चुकने के बाद उन्हे नियमित रूप से चाय तथा हल्का सा नाश्ता मिलता। कुछ लोगों को तो उन्हें सुबह शाम दोनों वक्त भी ऐसा विश्वास दिलाने आते जलपान कराना पड़ता।

थोड़े ही दिनों में स्वयं किशोरीलाल को यह विश्वास होने लगा कि उन्होंने चुनाव में खड़े होने का इरादा करके अच्छा किया। धन-दौलत का

र्याप्त संग्रह कर चुकने के बाद उनकी एक मात्र यही इच्छा थी कि उन्हें समाज में प्रतिष्ठा मिले और फिर चुनाव में जीतने के बाद तो उन्हें प्रतिष्ठा भी मिलेगी और समाज के नेतृत्व का अवसर भी। लिहाजा उन्होंने अपना कार्यक्षेत्र बैठक से बढ़ाकर बस्ती तक कर लिया और अब दिन में एक बार पूरे मुहल्ले का चक्कर काटने लगे। इस समय उनके साथ उनके कुछ चुनाव कार्यकर्ता भी हुआ करते थे।

अपने इष्ट मित्रों की सलाह से सेठ किशोरीलाल ने इन्हीं दिनों एक जीप गाड़ी खरीदी। एक नया ड्राईवर रक्खा और एक चुनाव मैनेजर की नियुक्ति की। कुछ लोग ऐसे भी पाले, जो जितना काम करते उतनी दक्षिणा उसी दिन पा जाते।

उनके चुनाव कार्यकर्ताओं ने उन्हें यह सूचना दी कि उनके विरोध में चार अन्य लोग भी खड़े हो रहे हैं जिनमें उन्हें डटकर मुकाबला करना है। इन चारों में दो अन्य पार्टियों के और दो निर्दलीय हैं। पार्टियों की ओर से खड़े होने वाले उम्मीदवारों की जीत की कोई सम्भावना नहीं है। निर्दलीय उम्मीदवारों में एक को नाम वापस ले लेने की उम्मीद है। दर-असल में उनका सीधा मुकाबला श्रीधर शर्मा से है जो पहली बार विधान सभा का चुनाव लड़ रहे हैं। श्रीधर शर्मा की प्रतिष्ठा के बारे में किशोरीलाल को उनके कार्यकर्ता ने अधिक कुछ नहीं बताया और कहा कि यदि उनका प्रचार कार्य जोर-शोर से चलता रहा तो किसी अन्य उम्मीदवार के बाजी ले जाने के आसार नहीं हैं।

सेठ किशोरीलाल ने ऐसा ही किया। प्रचार कार्य के लिए उन्होंने अपना एक अलग विभाग खोल दिया। इसमें कुल दस आदमी थे। भोंपू बोलने से पोस्टरबाजी तक के सारे कार्य इस विभाग ने शुरू कर दिए। हर राहगीर को छापे बांटे जाने शुरू हुए। घर-घर में पोस्टर चिपका दिए गए। सुबह से शाम तक 'लाउड स्पीकर' में बोला जाता। प्रचार का एक ही मजमून था—सेठ किशोरीलाल को विधान सभा के लिए अपना अमूल्य वोट

दीजिये। इन सबकी अनुगूंज में सेठ किशोरीलाल को अपनी जीत के स्वर सुनाई पड़ते।

इस व्यस्त कार्यक्रम के बीच एक दिन सेठ किशोरीलाल के पास उनके पुराने और अन्तरंग मित्र रामसहाय आये। वे उन्हें बैठक से उठाकर अपने घर पर ले आये और शान्तिपूर्वक पूछा-सुना है तुम इस बार विधान सभा के लिए चुनाव लड़ रहे हो?

हाँ भाई रामसहाय, अब लोगों की यही मर्जी है तो भला मैं कैसे टालता? सोचा, थोड़ा बहुत पैसा ही तो खर्च होगा। क्यों तुम्हारी क्या राय है? किशोरीलाल ने मन ही मन प्रसन्न होते हुए कहा।

मेरी राय जानने की तुमने कोशिश ही कब की है?-रामसहाय बोले।

अरे दोस्त, सब कुछ इतनी जल्दी हुआ कि तुमसे भेंट भी नहीं कर पाया। फिर भी अब कहदो। अपनी राय मुझे जरूर बताओ रामसहाय-किशोरीलाल ने किंचित सकोचशील भाव से कहा।

तो सुनो, मेरी राय में तुम बहुत बड़ी बेवकूफी कर रहे हो-रामसहाय ने पूरी गम्भीरता से कहा-चुनाव में खड़े होने से पहले तुम्हें एक बार यह देख लेना चाहिये था कि तुम कितने पानी में खड़े हो? तुम्हारे पाँव के नीचे की जमीन कितनी खोखली है?

मैं तुम्हारा मतलब नहीं समझा रामसहाय, अपनी बात जरा खोल-करके कहो।

मैं कहता हूँ अब भी अपना नाम वापस ले लो। श्रीधर शर्मा जैसे योग्य उम्मीदवार के सामने खड़े होकर तुम कभी विजयी नहीं हो सकते। जानते हो उसके पांवों की जमीन कितनी ठोस और मजबूत है? शायद नहीं तो मेरी राय मानो और इस चुनाव के चक्कर से अपने पाँव हटालो। बेकार में फंस जाओगे। हम व्यापारी लोगों के लिए राजनीति में पड़ना ठीक नहीं-रामसहाय ने मसोहती लहजे से किशोरीलाल को समझाया।

लेकिन इसमें हर्ज ही क्या है ? हम व्यापारी हैं तो क्या हुआ ! यह भी एक सौदा है और फिर इस सौदे मे तो मेरी जीत के आसार साफ-साफ नजर आ रहे हैं। मुझे पता नही था कि तुम मेरे इतने करीब के दोस्त होकर मुझे इस हद तक पहुंचने के बाद हतोत्साहित करोगे। जानते हो रामसहाय, इस चुनाव के चक्कर में अब तक मैं लगभग पचास हजार रुपया फूंक चुका हूँ। सब तरफ एक ही नारा गूंज रहा है—सेठ किशोरीलाल को वोट दो—सेठ ने अजीब अनमने भाव से उत्तर दिया।

अजीब बात है किशोरीलाल—रामसहाय ने कहा—तुम चुनाव जीतने को एक सौदा जीतना समझते हो। तुम्हें सौदे में अपनी जीत दिखाई दे सकती है। किन्तु यह सौदा नही है मेरे भाई। मैं तुम्हारा सच्चा दोस्त हूँ। इसीलिए तुम्हें अब भी सम्भल जाने की बात कहता हूँ। अभी भी कुछ नहीं बिगड़ा है तुम अपना नाम वापस लेकर खुद को लाखों रुपयों के नुकसान से बचा सकते हो। विश्वास रखो, मेरा वोट तो तुम्हीं को मिलेगा पर जीत के लिए तुम्हें बहुत से वोट चाहियें।

तुम शायद भूलते हो रामसहाय, जीत केवल एक ही वोट से होती है। बस मुझे तुम्हारा वोट चाहिये। जीत के और भी कई रास्ते हैं जिन्हें मैं अपना चुका हूँ—किशोरीलाल ने किंचित मुस्कुराकर कहा।

तुम्हारा ख्याल है कि तुम लाउड-स्पीकर पर चिल्ला-चिल्ला कर चुनाव में जीत हासिल कर लोगे ? अपने पक्ष के पोस्टर और पर्दे लगाकर श्रीधर जैसे योग्य उम्मीदवार को हरा दोगे ? अगर तुम ऐसा समझते हो तो तुम्हारा भ्रम है किशोरीलाल। जनता को इतना मूर्ख मत समझो। तुम्हारे ये पर्दे और पोस्टर तो गुम्मा गुम्मा आठ दिन से चिपकाये जा रहे हैं। तुम्हारी जीत के गीत तो भाड़े का यह लाउड-स्पीकर कल से गाने लगा है। जानते हो श्रीधर ने अपनी समाज सेवा की बुनियाद आज से बीस वर्ष पहले रखी थी। शहर भर का हर मुहल्ला उसकी सेवा के गीत गाता है। हर घर, हर आदमी के दिल ...

छाप पड़ी है, जिसे तुम्हारा यह मौसमी प्रचार कतई नहीं धो सकता। कभी नहीं मिटा सकता–कहते हुए रामसहाय कुछ उत्तेजित हो गए थे।

मैंने भी काफी दान-पुण्य किया है। गरीबों की मदद की है लोगों पर एहसान किये हैं–किशोरीलाल ने कहा।

सब अपने स्वार्थ के लिए। क्यों मुंह खुलवाते हो किशोरीलाल ? तुम्हारा दोस्त हूँ, क्या इतना भी नहीं जानता कि हम सेठ लोग दूसरों की मदद क्यों करते हैं ? यदि स्वार्थ नहीं होगा तो हमारी मदद में परलोक सुधारने की कामना जरूर होगी–रामसहाय बोले।

खैर छोड़ो इन बातों को रामसहाय। आज का युग प्रचार का युग है। विज्ञापन का जमाना। और फिर जनता के पास भी कौनसी सही दृष्टि है ? वह तो अन्धी है दोस्त ! अन्धी। और अन्धे लोगों को यदि मैं मार्ग सुझाने का काम अपने हाथ में लेना चाहता हूँ तो क्या बुरा करता हूँ ? तुम भी इस बात पर गौर करना और अपनी राय फिर से देना–कहते हुए किशोरीलाल उठने का उपक्रम करने लगे। तब तक शिकन्जी का गिलास उनके सामने आ गया था। वे बैठ गए।

दोनों ने शिकंजी पी ली तो रामसहाय जाने को हुए। किशोरीलाल उन्हें दरवाजे तक छोड़ने आए तो रामसहाय ने उन्हें जैसे अन्तिम चेतावनी देते हुए कहा–तुम चुनाव में खड़े भले ही होना किशोरीलाल, लेकिन याद रखना चुनाव में वोट नहीं जीते जाते। लोगों के दिल जीते जाते हैं। दिल, कहकर रामसहाय ने प्रस्थान किया।

चुनाव की सरगर्मी मे प्रवेश करने के बाद शीघ्र ही किशोरीलाल के मन पर से रामसहाय की कटु बातों का भार हट सा गया और वे पूर्ववत जोश के साथ अपने चुनाव प्रचार अभियान में दिलचस्पी लेने लगे।

चुनाव के दिन करीब आ गए थे। नामांकन वापस लेने की तारीख भी निकल गई। एक निर्दलीय उम्मीदवार ने अपना नाम वापस ले लिया था। अब मैदान में थे चार प्रतिद्वन्दी। एक किशोरीलाल, दूसरे श्रीधर

शर्मा । दोनों निर्दलीय और शेष दो पार्टियों के उम्मीदवार । यह सही था कि शहर से पार्टी का कोई उम्मीदवार नहीं जीत सकता था ।अतः चुनाव में सीधी टक्कर किशोरीलाल और श्रीधर शर्मा की थी । पार्टियों की ओर से चुनाव के अन्तिम दिन तक किशोरीलाल से समझौता कर लेने के सुझाव आये पर उन्होंने ठुकरा दिए । सेठ किशोरीलाल का प्रचार कार्य जोरों पर था और कोई भी सहज ही में अंदाजा लगा सकता था कि जीत उन्हीं की होगी ।

चुनाव के एक दिन पूर्व प्रचार कार्य बन्द कर दिया गया । दूसरे दिन वोट पड़ने शुरू हुए । किशोरीलाल की मोटरगाड़ी वोट देने के लिए लोगों को घर से लाती ले-जाती रही । कुछ लोगों को सेठ के कार्यकर्त्ताओं ने वोट के दाम देने का भी आश्वासन दिया । कुछको ऐसी मदद पहले भी की गई । दोपहर तक वोट पड़ते रहे । हर क्षण सेठ के दिल की धड़कन बढ़ती घटती रही । यद्यपि जीत की पूरी आशा थी उन्हें, तथापि अनेक प्रकार के ख्याल उनके मस्तिष्क में आते-जाते रहे । इस चुनाव के चक्कर में वे करीब दो लाख रुपया पानी की तरह बहा चुके थे ।

शाम तक वोटों की गिनती शुरू हो गई और रात्रि को बारह बजे परिणाम की घोषणा कर दी गई । चुनाव में श्रीधर शर्मा विजयी घोषित कर दिए गए । अन्धाधुन्ध खर्च और धुंआधार प्रचार के उपरांत भी सेठ किशोरीलाल चुनाव नहीं जीत सके । उन्हें कुल चौबीस वोट मिले थे जो वोटों की न्यूनतम संख्या से भी बहुत कम थे ।

उस रात सेठ किशोरीलाल आराम से सो नहीं सके । उनके मस्तिष्क में बार-बार अपने मित्र रामसहाय के शब्द गूंजते रहे चुनाव में वोट नहीं जीते जाते दोस्त ! लोगों के दिल जीते जाते हैंदिल ! ❖

समाधान

पिछले कई दिनों से कहानियों की बहुत सी पत्रिकाएँ उसकी टेबल पर पड़ी थीं, जिन्हें वह पढ़ने के लिए खरीद लाया था। उसने इसी माह की एक पत्रिका उठाई और देर तक उसके पन्ने पलटता रहा। खरीदने के बाद आज पहली बार उसने इन्हें हाथ लगाया था। नई पत्रिकाओं के अन्दर के कागजों से खास तरह की भीनी-भीनी गंध आ रही थी। वह पत्रिका को अपनी नाक के करीब लाकर सूँघता और फिर हटा देता। कुछ देर तक ऐसा करते रहने के बाद उसे महसूस हुआ जैसे वह कोई मूर्खतापूर्ण क्रिया कर रहा है। एक बार पत्रिका को पूरी तरह से बन्द किया और फिर नए उत्साह के साथ खोला। अब उसके सामने वह पृष्ठ था जिसमें प्रकाशित कहानियों की पृष्ठवार सूची दी गई थी। एक दो कहानीकारों के अतिरिक्त सभी नाम उसके लिए अजाने या नए थे। सूची में वह कम से कम पृष्ठों वाली कहानी ढूँढने लगा। तभी उसकी नजर 'आँखें' शीर्षक कहानी पर पड़ी जो पत्रिका के तीन ही पृष्ठों पर समाप्त हो गई थी। निर्देशित पृष्ठ खोला तो वह और भी खुश हुआ। कहानी के पृष्ठों पर बांयी ओर आधुनिक शैली के दो चित्र बने थे, जिससे पृष्ठ पर काफी जगह घिर गई थी। उसने सोचा–इस तरह से एक पृष्ठ और कम पढ़ना पड़ेगा। वह पूरा एक कालम भी नहीं पढ़ने पाया था कि उसे जम्हाई आने लगी। उसने जितनी लाइनें पढ़ीं उनमें किसी सर्कस का जिक्र था जिसे आँखें शीर्षक कहानी के अन्तर्गत पढ़कर उसे अरुचि होने लगी। फिर भी उसने कहानी को आगे पढ़ने की चेष्टा की। किन्तु चाहकर भी वह उसमें मन नहीं लगा सका और पत्रिका को

एक ओर पटक दी। कुर्सी को खिसकाकर दूर ले आया और टेबल पर पैर रखकर आराम से बैठ गया। उसकी निगाह सामने की दीवार पर टँगे कलैण्डर पर जा टिकी, जिसमें एक युवती की तस्वीर थी। उसकी शक्ल वीरा से बिल्कुल मिलती-जुलती थी। शायद इसीलिये वह उसे खरीद लाया था। उसने सिगरेट सुलगाई और धुएँ के वृत्त छोड़ता हुआ सोचने लगा। कई बार कोशिश करने पर भी वह कहानियाँ पढ़ने या लिखने में कभी कोई रुचि नहीं रख सका है। एक पृष्ठ पढ़ता है और उसे बरबस पत्रिका को एक ओर पटक कर अपना ध्यान कहीं और केन्द्रित करना पड़ता है। उसे इस बात का एहसास है कि उसने जिन कहानीकारों के नाम याद कर रखे हैं उनमें से किसी के भी लेखन से वह ठीक प्रकार से परिचित नहीं। किसी की शैली अथवा कथानक के विषय में वह अधिकारपूर्वक बातचीत नहीं कर सकता। उसका कहानी लेखन सम्बन्धी ज्ञान नहीं के बराबर है तो फिर वह इस बेबुनियाद जगह पर खड़ा होकर वीरा के साथ खिलवाड़ क्यों करना चाहता है?

शीघ्र ही उसके विचार की दिशा बदल गई और अब वह वीरा के विषय में गहराई से सोचने लगा। वीरा से उसका परिचय अब यद्यपि नया नहीं रहा था, फिर भी जिस संदर्भ में वह उसे जानती या उससे मिलती जुलती थी, उसकी बुनियाद बहुत खोखली थी। कभी भी यह रिश्ता एक झटके के साथ टूट सकता था। यही सन्देह उसके मस्तिष्क पर छाया रहता। उसने वीरा से अब तक सब कुछ छिपा रखा है, जैसे उसके गिर्द अंधेरी दीवारें खड़ी करके उसको भ्रम-जाल में फँसा लिया हो। वीरा उसे एक अच्छा कहानीकार समझती है, और जब भी उसे मिलती है, अपनी पढ़ी हुई किसी नई कहानी पर बातचीत करना चाहती है। उससे वह अनेक प्रश्न पूछती है। पर वह हर बार टाल देता है। बातचीत के विषय को बदल कर उसका ध्यान किसी और बात पर केन्द्रित कर देता है। वह सोचता है वीरा अगर उसे चाहती है तो सिर्फ इसलिये कि उसकी कहानियाँ देश की

प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में नियमित रूप से छपती हैं और उसे पसन्द आती है। वह उसकी कहानियों को कई कई बार पढ़ती है और जब भी किसी कहानी के विषय में कोई शंका होती है तो उसका समाधान भी करना चाहती है। किन्तु वह उसके किसी प्रश्न का सतोषजनक उत्तर नहीं दे पाता है। वीरा का बौद्धिक स्तर शायद उससे ऊँचा है। वैसे भी वीरा हर बात सोच समझ व नाप-तोलकर कहती है। कभी-कभी तो वह उसके सामने अपने आपको एकदम बौना अनुभव करने लगता है। किन्तु वीरा ऐसा नहीं सोचती वह जानती है कि इन्द्र की कलम में अजीबोगरीब ताकत है, जो उसे बाँधसा लेती है।

बहुत देर तक सोचने के बाद उसने यह निर्णय लिया कि अब वह वीरा को और अधिक भ्रम में नहीं रक्खेगा। उसके सामने सारी स्थिति स्पष्ट कर देगा। आखिर वह उसे इस तरह भ्रम में रखकर उसका विश्वास नहीं जीत सकता। उसकी सहानुभूति उसे किसी तरह संतोष नहीं दे सकती। अब वह जब भी वीरा से मिलेगा उसे साफ-साफ कह देगा कि उसे कहानियाँ लिखने व पढ़ने का कोई शौक नहीं। आज तक वह उसका साथ पाने के लिए यह सब ढोंग रचाता रहा। वीरा जिस इन्द्र को तुमने देखा है, वह उसका सही रूप नहीं। हकीकत कुछ और ही है। इन्द्र तो एक बिल्कुल साधारण युवक है जिसमें कहानी लिखकर किसी के हृदय पर विजय पाने की क्षमता भला कहाँ है?

यह सब कुछ जानकर वीरा को शायद बहुत दुख हो सकता है। यह भी सम्भव है कि वह उसे हमेशा के लिए ठुकरा दे। निश्चय ही वीरा यह मालूम करके भविष्य में उससे मित्रता के सम्बन्ध नहीं बनाये रख सकती। इन्द्र वीरा को स्थिति स्पष्ट कर देने के बाद की अनेक सम्भावनाओं के विषय में सोचता रहा।

शाम हो चली थी। 'क्वालिटी' रेस्तरा के बाहर वह वीरा की प्रतीक्षा में टहल रहा था। ठीक साढ़े पाँच बजे वीरा ने उससे यहाँ मिलने को कहा था। उसने करीब गुजर रहे रिकार्ड दफ्तर के अपने एक मित्र को देखा और

मुँह फेर लिया। वह आगे निकल गया तो उसकी आँखें फिर रास्ते पर बिछीं। दूर रिक्शे में आ रही वीरा पर उसकी नजर पड़ी तो वह आश्वस्त हुआ। उसे देखकर वीरा के चेहरे पर भी एक हल्की सी मुस्कुराहट बिखरी।

दोनों ने रेस्तराँ में प्रवेश किया। वीरा के हाथ में कुछ पुस्तकें और एक पत्रिका थी। रेस्तराँ के हरे रंग के गद्देदार सोफासेट पर बैठकर दोनों बैरे के आने की प्रतीक्षा करने लगे। बैरा काउण्टर पर एक ग्राहक को कई-कई बार उसके बिल की चीजों के नाम दुहराकर सुना रहा था। वीरा ने देखा पड़ोस में बैठा एक अधेड़ उम्र का आदमी उसकी ओर घूर रहा है। वह जिस ढंग से बार-बार अपनी नुकीली मूछों पर ताव दे रहा था वह उसे बिल्कुल अरुचिकर लगा। वीरा और इन्द्र उठकर अन्दर फेमिली—केबिन में आ गए।

बैरा आ गया। उसने दोनों को सलाम किया और अनावश्यक शालीनता बरतता हुआ एक ओर खड़ा हो गया।

कॉफी लाओ।

जी साब—बैरा चला गया।

वीरा ने पानी का गिलास लिया और इन्द्र की ओर देखती हुई पत्रिका के पृष्ठ खोलने लगी। जाने क्यों, उसे थोड़ी झिझक सी महसूस हुई। वही पत्रिका थी जिसमें अक्सर उसके नाम से कहानियाँ प्रकाशित होती रहती थीं। आज भी उसकी एक कहानी छपी थी। आज पहली बार वह स्वयं पत्रिका नहीं लाया था। वीरा लाई थी।

वीरा—इन्द्र ने कहना शुरू किया।

हूँ-वीरा के सामने पत्रिका का वह पृष्ठ खुला था जिसमें उसकी कहानी छपी थी। अचानक किसी पंक्ति पर रुककर वह बोली-लेकिन मैं यह नहीं मानती कि····।

सुनो वीरा—उसने बात काटते हुए कहा। पहले मेरी बात सुनलो। यह मेरी अपनी लिखी कहानी नहीं है। मैं आज तक तुम्हें धोखे में रक्खे रहा। मैंने कभी कोई कहानी नहीं लिखी। मेरे नाम से छपी हुई कहानियाँ मेरी अपनी नहीं, मेरे एक लेखक मित्र की हैं। सच कहता हूँ मैं इन्द्र हूँ, केवल इन्द्र। और कुछ नहीं। कहकर वह खामोश एक अपराधी की तरह टेबल के काले-काले कांच को देखता रहा। फिर जैसे आस-पास घिर आई उदासी को तोड़ने की चेष्टा करता हुआ बोला—वीरा, क्या तुम अब भी मुझे इसी तरह चाहती रहोगी। मेरे व्यक्तित्व पर चढ़ा हुआ नकली चेहरा उतर चुका है। मैं आज तुमको सच-सच बता देना चाहता हूँ। हो सकता है, सच जानने के बाद तुम मुझसे घृणा करने लगो। लेकिन वीरा, क्या बनावट की नक़ाब उतार कर अपने असली रूप में नहीं जिया जा सकता? आज के बाद शायद तुम कभी कहानीकार इन्द्र से नहीं मिल सको। लेकिन हाँ, मैं तुमसे फिर भी मिलना चाहूँगा। क्या तुम केवल इन्द्र से मिलना चाहोगी?

वीरा ने देखा कि यह सब कहने के बाद इन्द्र की आँखों में जिज्ञासा की चमक खेलने लगी है। वह बड़ी बेसब्री से उसका उत्तर सुनने को लालायित है। उसका निर्णय जानने को उत्सुक है।

वीरा इन्द्र की प्रतीक्षित आँखों में झाँककर मुस्कुरा दी। बैरा कॉफ़ी ले आया था। दोनों ने एक साथ प्याले उठाए और चुस्की लेने से पूर्व ही वीरा बोली—अच्छा हुआ इन्द्र, तुमने यह सब कुछ मुझे स्वयं ही बता दिया। यही बात यदि मैं किसी और से सुनती तो शायद—आगे उसने कुछ नहीं कहा।

लेकिन अब? अब तो तुम्हारे मन में मेरे प्रति कोई शंका नहीं? इन्द्र ने अपना दायाँ हाथ वीरा की ओर बढ़ा दिया जो उसकी कोमल अँगुलियों से खेलने लगा। वीरा ने आँखों ही आँखों में इन्द्र की बात की स्वीकृति दे दी।

❖

हरे रंग की पृष्ठभूमि में

कूची और रंगों से बहुत दिनों तक संप्रक्त रहने के कारण मेरी यह धारणा बन गई है कि रंगों का उपयुक्त चुनाव परिष्कृत रुचि का परिचायक है। स्टूडियो जाने के लिए उस दिन बस में चढ़ा तो दृष्टि हठात् सामने जमकर रह गई। 'स्ट्राबेरी' रंग के कुर्ते पर हरे रंग का दुपट्टा। मैं देखता ही गया, और सच तो और भी अधिक जब दृष्टि परिधानों से हटकर आकृति पर गई। मेरे अन्दर से किसी ने कहा—काश! यह तुम्हारी 'मॉडेल' होती। अवसन नहीं, इन्हीं सुरुचिपूर्ण रंगों के समन्वय में। शायद मेरी कला व्यवसायी दृष्टि कुछ देर शालीनता की सीमा से बाहर रहती, परन्तु कण्डक्टर ने तुरन्त स्थिति का बोध करा दिया। आना 'मण्डी हाउस' दिखा, मैं आगे की सीट पर बैठ गया। वह मेरी पीठ की ओर थी। मालूम नहीं कब, कहाँ उतर गई। मेरा स्टूडियो आ चुका था।

यों संयोग या दुर्योग में मेरा विश्वास नहीं, फिर भी उसे क्या संज्ञा दूँ? शाम को आर्ट सोसाइटी की 'स्थापना स्मृति' थी। मैं हाल में कुछ देर से पहुँचा। एक और सीट खाली थी। मैं बैठ गया। बगल में देखा—अरे! वही ग्रीन स्वेटर वाली लड़की। सोसायटी का सेक्रेटरी साल-भर की कारगुजारियों का ब्योरा दे रहा था। वह बड़े तन्मयभाव से सुन रही थी। मन में सोचा, अवश्य कोई आर्टिस्ट है। मन के सहज कुतूहल को एक पीठिका मिल गई। रिपोर्ट के बाद एक छोटा सा एकांकी था। मैंने देखा वह हर हास्य स्थल पर ठहाका मार झूम उठती। उसने एक स्थल पर जोर से कहा। वाह! कहा और पहली बार मेरी ओर देखा। वह इस प्रकार

सकपका गई जैसे मैंने उसे घर के बन्द आँगन में नाचते हुए दीवार से उचक कर देख लिया हो। उसके बाद वह दबी, सहमी सी बैठी रही। यद्यपि मैंने ऐसे भाव जताने की चेष्टा की थी कि मैं उस ओर से बेखबर हूँ। परन्तु उसकी स्थिति ऐसी बनी रही जैसे हवा से बार-बार फड़फड़ाते हुए किसी कागज पर पेपरवेट रख दिया गया हो। कई बार मेरे जी में आया कि मैं वहाँ से उठ जाऊँ और उसे आनन्द से किलकने दूँ। परन्तु उसका सामीप्य मुझे सुखद था। अतः मैं स्वार्थवश वहीं बैठा रहा। ज्ञात नहीं, कार्यक्रम कब समाप्त हो गया। काफी देर से कसे-बसे लोग बाहर निकल रहे थे। वह कुर्सी से उठ कर राह खोजती सी खड़ी रही। आगे वाली पंक्ति के लोग उठ गए तो हम चले।

जिस नम्बर के बस-स्टाप पर वह खड़ी हुई। मेरा भी वही था। निश्चय हो गया कि वह इस बस से नियमित जाती है। क्या अब तक आँखें अंधेरे की अभ्यस्त थीं जो यह चमक दिखाई न दी।

बस आ गई। हमें आमने-सामने की सीटें मिलीं। वह सहमी-सहमी थी, सकुचाहट अनुभव करती हुई। उसके हाव-भाव और भंगिमा से यह प्रकट होता था जैसे वह बड़ी शान्त और एकान्तप्रिय है। बस कई स्टापों से गुजर आई थी। पर उसने एक बार भी मेरी ओर देखने के लिये नजर नहीं उठाई। मुझे लगातार उसकी ओर देखने में अब झिझक हो रही थी। मुझे लगा कि वह यह अनुभव कर रही है कि उसका पीछा किया जा रहा है। अपने आपको गलत समझने का मौका मैं नहीं देना चाहता था। नित्य साथ का सफर जो ठहरा। अतः निराशा सा हो मैंने दृष्टि फिरा ली।

बस फिर किसी स्टाप पर रुकी। बस के अन्दर की भीड़ चीरती हुई एक प्रौढ़ा आगे की सीटों की ओर बढ़ने का यत्न कर रही थी। श्यामा काकी! मैं उठ खड़ा हुआ। मेरे पड़ोसी स्वर्गीय मिरजकर की पत्नी और साथ में उसकी इकलौती बेटी दीक्षा। श्यामा काकी हाँफते हुए बैठ गई।

दीक्षा अब भी खड़ी थी। उससे मालूम हुआ कि वे अस्पताल से लौट हैं। पिछले कुछ दिनों से काकी अस्वस्थ थीं। सुबह तो काकी की तबि इतनी गड़बड़ा गई कि दीक्षा घबरा गई। इतनी सामर्थ्य तो थी नहीं डाक्टर को घर की 'विजिट' के फीस दिये जाते। इसलिये 'पब्लिक अस्पत में दिखा वापस आ रही थी।

दीक्षा की बातों में सामने बैठीयुवती को मैं भूल सा गया था। उ जब दीक्षा को बैठ जाने का निमंत्रण दिया तो मुझे अपनी पूर्व स्थिति भान हुआ। मैं बस के बाहर देखने लगा। दीक्षा और वह युवती लगात बातें कर रही थी। शायद परस्पर परिचय के बाद दीक्षा उस युवती अपनी करुण गाथा सुना रही थी।

लाल बाजार का बस स्टाप आ गया। मुझे यहीं उतरना था। का सीट से हाँफती हुई उठ खड़ी हुई। उन्हें सहारा दिये हुए मैं बस से उतर दीक्षा और उनके पीछे वह युवती। मुझे आश्चर्य हुआ, वह भी वह उतर गई।

अपना घर आ जाने पर दीक्षा बोली–आइए दा। चाय पीते जाइये

नहीं, नहीं अब मैं चलूँगा–मुझे घर पहुँचने की जल्दी थी।

आइए न दा। मेरी खातिर नहीं तो मेरी नव परिचित सहेली के लिए ही सही—दीक्षा ने अनुनय भरे शब्दों में कहा।

ओह, तुम्हारी नव परिचित सहेली—मैंने उसे नमस्कार किया। इस भाव के साथ कि जैसे उसे इसके पहले कभी देखा ही नहीं हो।

उसने बड़ी सादगी के साथ हाथ जोड़े। उसके चेहरे पर मुस्कुराहट की एक रेखा भी न थी।

दीक्षा के यहाँ कुछ बात हो न सकी, क्योंकि वह अधिक समय तक ख्याला काकी से बोलती रही। मैं चुप बैठा काकी के भाग्य से ईर्ष्या करता रहा।

दूसरे दिन स्टूडियो के लिये चलने लगा तो देखा-वह दीक्षा के घर

की ओर मुड़ रही थी। मैं समीप से गुजरा तो उसने धीरे से नमस्ते किया और बिना रुके चल दी।

फिर कुछ दिन एक अन्य कार्य में व्यस्त रहने के कारण मैं बस से नहीं जा सका। हरे स्वेटर वाली उस लड़की की याद व्यस्तता के इन दिनों में भी कभी-कभी उभर आती। लौटते समय एक दिन दीक्षा रास्ते में मिल गई–अरे दा, कहा रहते हैं जाने आप इन दिनों ? मा की तबियत भी पूछने नहीं आये। वह मेरी सहेली सुरुचिमाला है न ! वह आपको लगातार पूछती रही।

कौन सुरुचिमाला ?–मुझे लगा मेरे चारों ओर एक हरित आभा निखर गई है। हरे स्वेटर वाली लड़की मुझसे मिलने को उत्सुक थी। मुझे इस उपलब्धि पर बड़ी प्रसन्नता हुई। परन्तु दीक्षा कहीं कुछ और न समझले, अतः मैंने पूछा–काकी अब कैसी है ?

काकी की तबियत अब सुधर रही है। सुरुचि ने हमें इस आड़े वक्त पर बड़ी सहायता की है। आप तो जानते हैं। हमारे पास क्या रखा था। शायद दवाई और डाक्टर की फीस का प्रबंध भी नहीं हो पाता। परन्तु डाक्टर को घर बुलाने से लेकर माँ के लिये पथ्य तक का प्रबंध स्वयं उसने किया है। मैं तो संकोच में डूबी जा रही थी। कई बार उसे मना भी किया। परन्तु उसने कहा – दीक्षा। मेरी अपनी कोई माँ नहीं, तुम्हारी माँ में, मैं अपनी माँ की छाया और वात्सल्य देखती हूँ। मुझे माँ के कुछ काम आने दो—दीक्षा न जाने कितनी देर तक सम्भ्रमभाव से उस हरे स्वेटर वाली लड़की की प्रशंसा करती रही।

सच ! क्या उसका अन्तर इतना ही निर्मल और सौन्दर्यशाली है जितना कि बाह्य। मैं उसके व्यक्तित्व के इस नये पक्ष से और भी प्रभावित हुआ।

अब वह श्यामा काकी के यहाँ आती, प्रायः शाम को मैं वहाँ उपस्थित रहने से नहीं चूकता। हम के मिलने पर, राह में दिख जाने पर

परस्पर अभिवादन हो जाता। उसके व्यवहार में कुछ ऐसी शालीनता और गरिमा थी कि हमारा परिचय पार्थक्य की मर्यादित सीमारेखा से आगे नहीं बढ़ पाया। उससे मिलना तो एक संतुष्टि मन में व्याप्त रहती और उसकी अनुपस्थिति में एक अभाव एक आकांक्षा तिर आती। मन का बरबस बढ़ता आकर्षण और मर्यादित गरिमामय व्यवहार।

एक दिन मुझे अपने एक अति यथार्थवादी चित्र के लिए 'मॉडेल' की तलाश थी। 'मॉडेल' के रूप में काम करने वाली कई परिचित लड़कियों को परखकर देख चुका था। मुझे उनमें से कोई चित्र के उपयुक्त नहीं लगी। आखिर मैंने उस बाजार की शरण ली जिसमें प्रायः सम्भ्रान्त लोग जाने में हिचकते हैं। जिसे हम शरीफ लोगों ने बदनाम बाजार की संज्ञा दे रखी है। बाजार में पहुँच कर एक मकान के जीने पर बेधड़क चढ़ गया। ऐसे मकानों के बारे में मेरी राय कुछ और ही थी। परन्तु बड़ी सफाई और सुरुचिपूर्ण ढंग से सजा यह मकान मेरे मन में कुछ और ही भ्रम उपजा रहा था।

अन्दर की बैठक में महफिल सजी थी इत्र और तम्बाखू की मिली जुली गंध से वहाँ का वातावरण काफी उत्तेजक हो रहा था। शायद अभी अभी मुजरे का एक दौर होकर चुका था। क्योंकि महफिलनवाज अपने मुँह से वाह! वाह! की झड़ी लगा रहे थे और बीच में सजी-धजी एक लड़की उस वाह! वाह! को एक खास अन्दाज से समेट रही थी।

मुझे दरवाजे पर देखकर वाह वाह के लक्ष्य ने अपना सर ऊपर उठाया। अरे, वही ग्रीन स्वेट वाली लड़की! ऍ.... यह क्या?........ नहीं, नहीं........मुझे भ्रम हो रहा है ... .यह वह नहीं हो सकती ......वैसी ही आकृतिसाम्य से मैं गलत समझ रहा हूँ....... पर उस लड़की की आँखें भी मुझे देखकर जड़ सी हो गयीं। एकाएक आश्चर्य विस्फरित सी....नहीं....नहीं यह वही ग्रीन स्वेटर वाली लड़की है.... शायद वह स्वयं को इस स्थिति में देखे जाने की कल्पना भी नहीं

करती थी। आह ! यह सब अनजाने ही क्या हो गया....? मैं लौटने के लिये मुड़ा तो वह तेजी से उठ आई।

टहरिये—उसने दबी सी आवाज में कहा।

मैं रुक गया।

सुनिये, आपके सामने मेरी सब असलियत नगी हो गई है। मैं जानती हूँ, आप इस समय क्या सोच रहे होंगे। पर मेहरबानी करके एक एहसान मुझपर कीजिये। बड़ी मुश्किल से इस पापजीवी दुनियाँ के बाहर मैं अपने लिए एक जगह बना पाई हूँ। किसी के निश्छल हृदय में एक कोना। आप मेरी यह छोटी सी दुनी नहीं छीनेंगे न ?

मैं उससे कुछ कहूँ इससे पहिले ही वह चल दी। क्योंकि उसके बिना महफिल सूनी-सूनी हो रही थी। मैंने उसकी ओर फिर देखा। मुझे संतोष हुआ—इस समय उसने ग्रीन स्वेटर नहीं पहन रक्खा था। ❖

आन के लिए

बलवंत चाय के समय से पूर्व ही अनिल के घर चला गया। कल उन दोनों के बीच चल रही गरमागरम बहस का सिलसिला बीच में ही टूट गया था। बहस का विषय था—देशभक्ति। बलवंत बहस के दौरान काफी गम्भीर होगया। और तब तो उसे बहुत ही बुरा लगा, जब अनिल ने उठते हुए कहा—अच्छा भाई, अब मैं चलता हूं। ये देशभक्ति की बातें तो फिर भी होती रहेंगी। बातें तो सभी कर लेते हैं। पर देश के लिए मर-मिटना कितने लोग जानते हैं?

अनिल तो चला गया लेकिन बलवंत को उसका अन्तिम वाक्य बराबर कचोटता रहा। देश के लिए मर-मिटना कितने लोग जानते हैं? बलवंत काफी भावुक था और सहज ही में कोई ऐसी बात बर्दाश्त नहीं कर सकता था जो उसके जीवन के किसी महत्वपूर्ण पहलू को चुनौती देती हो। उसके सिद्धान्तों पर किसी प्रकार का आक्षेप या आघात करती हो। वह कई बार सोचा करता—उसे इतना भावुक नहीं होना चाहिए। सभी प्रकार की बातें कहने वालों तथा आक्षेप करने वालों से समझौता कर सकने की क्षमता उसे रखनी चाहिए। किन्तु जाने क्यों, वह चाहकर भी ऐसा नहीं कर पाता।

वह रात भर यह सोचता रहा। अनिल ने उसके साहस को चुनौती दी है। उसके सिद्धान्तों को ललकारा है। वह देशभक्ति की बातें मात्र ही नहीं करता। अपितु समय पड़ने पर देश के लिए अपनी जान भी दे सकता है।

बलवंत के आने तक अनिल बिस्तर पर पड़ा ऊँघ रहा था। दरवाजा शोभा ने खोला। बलवंत को आया देख, मुस्कुराकर बोली—ओ हो, बलवंत। खैरियत तो है, जो दस बजे तक बिस्तर का मोह नहीं छोड़ सकता वो सूरज की पहली किरण के साथ आज यहाँ ? आज सूरज तो सही दिशा से निकला है न ? अनिल भैया तो अभी तक बिस्तर पर ही ऊँघ रहे हैं।

अरे नहीं, मैं जाग गया हूँ शोभा। तुम चाय ला सकती हो—अन्दर से ही अनिल ने पुकारा—बलवंत अन्दर आ जाओ।

अच्छा मैं चाय लेकर आती हूँ—कहकर शोभा रसोईघर की ओर चली गई।

बलवंत देखता ही रह गया। शोभा स्नान कर चुकी थी। पर उसने बाल नहीं सँवारे थे। खुले बालों में उसकी छवि बलवंत को काफी रुची। वह उसकी हिरनी जैसी आँखों को निहारता रहा। श्वेत वस्त्रों में उसका अंग-प्रत्यंग खिल रहा था। शोभा के जाते ही वह सम्भला और अन्दर के कमरे में पहुँच गया।

क्यों भई देशभक्त ? आज क्या निद्रा देवी से झगड़ा हो गया ? सुबह सुबह कैसे ? क्या देशभक्ति का कोई करतब दिखाने की ठानकर आ हो ? सुना है बचपन से ही तुम ए. सी. सी. और एन. सी. सी. बहुत अच्छे केडिट रहे हो। होमगार्ड की ट्रेनिंग भी ले चुके हो। क्या सबको एकसाथ आजमाने की सोची है—छूटते ही अनिल एक साथ बातें कह गया।

बलवंत पर इन सब बातों का वही प्रभाव हुआ जो होना था। में जैसे घी पड़ गया हो। बोला—यह तो समय ही बतायेगा। लेकिन एक जरूर कहूँगा अनिल, तुमने मुझे सदा गलत समझा है। इतना करीब रह भी तुम मेरे मन की गहराइयों में नहीं पहुँच पाए। सच कहता हूँ अनि मैं अगर देश के काम आ सकूँ तो इससे बढ़कर सौभाग्य की बात मेरे

और कोई नहीं हो सकती। वाह ! आज तुम जिस बात को हँसी में उड़ा रहे हो यह जीवन का सत्य बन पाता—कहते हुए बलवंत का स्वर संयत और गम्भीर हो गया था।

शोभा अब तक चाय लेकर आ गई थी और जैसे ही बलवंत ने कथन खत्म किया, उसने ट्रे टेबल पर रखकर जोर से तालियाँ बजाई।

शाबाश ! अनिल भैया। आज देश को ऐसे ही लोगों की जरूरत है। तुम जैसे लोगों की नहीं, जो खाने-पीने के नाम पर सबसे आगे और काम करने के नाम पर ढीले। बलवंत कम से कम देश पर मर-मिटने का विचार तो रखता है। उसके कथन में बलवंत के प्रति हल्का सा व्यंग्य था, जिसे समझने मे बलवंत को देर नहीं लगी।

शोभा, लगता है जैसे तुम भी अनिल की कोरी और कागजी बातों से प्रभावित हुई जा रही हो—बलवंत ने चाय बनानी शुरू करदी थी।

मैं ? अजी बिल्कुल नहीं, मैं अगर अनिल जैसे आलसी भाई से प्रभावित होती तो स्कूल-कालिज में कभी सेवा-सुश्रूषा की कोई ट्रेनिंग नही लेती मैं वह शोभा नहीं, जो किसी कठिनाई से डरकर मैदान छोड़कर भाग जाऊँ। मैंने कठिनाइयों से जूझना सीखा है। समय पड़ने पर देश के हित में अपनी जान देने से भी नहीं हिचकिचाऊँगी।

बाबा, बस भी करो चाय के वक्त किन देशभक्तों से पाला पड़ गया। आप लोगों को सूचनार्थ मैं निवेदन करदूँ कि मैं ऐसे सात सौ बत्तर देशभक्तों से परिचित हूँ जो खतरे से बाहर होने पर तो शेर जैसी दहाड़ बताते हैं। पर जब खतरा पैदा हो जाता है तो सारे के सारे मच्छर-मक्खियों की तरह उड़ते हुए नजर आते हैं। देशभक्ति का नारा लगाना और बात है तथा देश के लिए कुछ कर गुजरना और। चलो चाय पियो, देखता हूँ तुम्हारी यह फौजी ट्रेनिंग और शोभा की नर्सिंग सेवा क्या काम आती है। तुम लोगों को भी ऐसी बातें करने की फुर्सत अब मिली है जब देश में चारों ओर शांति का साम्राज्य छाया हुआ है। भगवान न करे। हमें तुम लोगों की देश-

भक्ति आजमाना पड़े—अनिल ने चाय का प्याला बलवंत को थमाते हुए कहा ।

बलवंत तो बहुत सारी बातें सोचकर आया था पर अनिल ने हर बार उसका ध्यान चाय और पकोड़ी पर आकर्षित करते हुए देशभक्ति की बात को टाल दिया। बलवंत और अनिल भोजन करके बाहर निकल गए।

उस दिन के बाद अनिल और शोभा की भेंट बलवंत से नहीं हो सकी। वे दो-एक बार उसके घर भी गए लेकिन वहाँ पता चला कि वह नौकरी की तलाश में अपने मामा के यहाँ कलकत्ता गया है। अनिल और शोभा को आश्चर्य हुआ कि इतना करीब रहकर भी उसने अपने जाने के विषय में कभी उनसे कोई जिक्र नहीं किया। कलकत्ता से उसके मामा का खत आया तो उसमें लिखा था कि यहाँ बलवंत पहुँचा ही नहीं है।

बलवंत के माँ-बाप चिंतित होगए और अपने सभी परिचितों को खत डालकर बलवंत की सूचना देने को लिखा।

●

अक्टूबर, १६६२ की एक सुबह देशभर के अखबारों में एक समाचार छपा। चीनियों ने भारतीय सीमाओं पर बर्बर हमला बोल दिया। सारा राष्ट्र क्षुब्ध और चिंतित हो गया। चीन ने एक ऐसे देश को युद्धरत होने पर मजबूर कर दिया जो अपने काल में विश्व-शांति के लिए अथक प्रयत्न करता रहा। अनिल ने आज कई दिनों के बाद अखबार देखा था। भारत पर चीन के हमले का समाचार पढ़ा तो दंग रह गया। उसे एकाएक बलवंत का खयाल हो आया।

शोभा—अनिल ने रसोईघर में बैठी हुई शोभा को पुकारा।

शोभा आगई। अनिल ने अखबार उसके सामने रख दिया। शोभा ने समाचार पढ़ा तो पढ़ती ही रह गई। उसके हाथ जैसे काँपने लगे।

इन मक्कारों की ये हिम्मत ? उसने घृणाभाव से कहा।

हाँ ! आज नहीं तो कल, इन खूनी दरिन्दों का एक दिन यह नं
रूप सामने आने ही वाला था। लेकिन देखना यह है कि संकट की इस घ
ीं तुम और बलवंत जैसे लोग क्या करते हैं ? छी ! बातें ही बातें। क
या वह बलवंत जो देशभक्ति का दम भरता था ? आज उसका प
ठकाना भी नहीं। और तुम भी शोभा, याद रखो, यह लड़ाई पूँ खत्म
ो नहीं। भारतवासी अपने सम्मान के लिए मर-मिटेंगे। सैकड़ों बलि
ेंगे, सैकड़ों घायल होंगे। अब तुम्हारी जरूरत है देश को। सीमा पर
है घायल सैनिकों की देखरेख के लिए जाओ ? माताजी, पिताजी
दापि इसकी आज्ञा नहीं देंगे। मैं भी नहीं चाहूँगा। पर तुम्हारा क
सना है।

शोभा का मन भी बलवंत के प्रति ग्लानि से भर आया। प
सके लिए अनिल के मुँह से उसे ऐसी बातें नहीं सुननी पड़ती।

शोभा सब कुछ सुनती रही। हुआ यह कि उसने देश सेवा के
ानी कमर कस ली। अपने चाचा को अपनी सारी इच्छा सुनाकर व
ाचा सरकारी अस्पताल में डाक्टर थे। बोले—मैं सैनिकों की
ए आज से तीन दिन बाद तेजपुर के अस्पताल में जा रहा हूँ। तुम
स्वयं-सेविका बनकर मेरे साथ चल सकती हो।

शोभा को मन की मुराद मिल गई। वह दिन भी आगया,
पुर के अस्पताल में परिचारिका बनकर काम करने लगी थी।

पिछले पाँच दिनों में चीनियों ने और भी बड़े पैमाने पर हमल
र भारतीयों को मजबूर मोर्चे सम्भालने के लिए कुछ पीछे हटन
ा बीच सैकड़ों चीनी मारे गए। सैकड़ों भारतीय सैनिकों ने
की और अस्पताल में हर चार घण्टे के बाद सैकड़ों घायल आ
का आती मदद की पड़ती थी। रात-रातभर जागकर घायल
सेवा करती रहीं।

एक शाम को जब वह दो दिन के लगातार परिश्रम से थक गई थी, वार्ड से बाहर आई तो उसने देखा लगभग तीस घायलों को उतारा जा रहा है। अन्तिम घायल को ले जाया जा रहा था तो उसकी नजर सिपाही के चेहरे पर पड़ी। चेहरा परिचित लगा। बैड पर लाने के बाद वह सीधी उसके पास पहुँची।

अस्पताल की बत्तियाँ जल चुकी थीं। बल्ब के मद्धिम प्रकाश में शोभा ने देखा! वह घायल सिपाही और कोई नहीं, बलवंत है। वह चीख उठी—बलवंत!

इससे पूर्व कि बलवंत कुछ कहता उसकी जांघ में जोर से दर्द हो उठा और वह सिर्फ शोभा—कहकर बेहोश सा होगया।

शोभा, अनिल से कहना मुझे गलत न समझे—बस बलवंत के मुँह से इतना ही निकला और वह मूर्छित होकर सदा-सदा के लिए सो गया। मातृभूमि की रक्षा करते-करते एक वीर की गति को प्राप्त हुआ।

शोभा की आँखों में आँसू थे। पर गम के नहीं, खुशी के आँसू, क्योंकि बलवंत ने अपनी आन निभा कर सदा सदा के लिए अपने आप को अमर कर दिया था।

❖

पराजय का कम्पन

बाबू गंगासहाय पुस्तक प्रकाशन का व्यवसाय करते हैं।
प्रकाशक के रूप में आपने देशभर में जो ख्याति और सम्मान
वह बिरले ही कर पाते हैं। अच्छे-अच्छे जरूरतमन्द लेखकों
में पुस्तकें लिखवाकर या रायल्टी के आधार पर उनकी पुस्त
आपने प्रकाशन के क्षेत्र में एकाधिकार कर रक्खा है। आपके
अच्छे लेखकों से कच्चे लेखकों तक की सभी पुस्तकें आसानी
जाती हैं। आपको इस क्षेत्र में पूरे पच्चीस साल का ठोस
प्रकाशन क्षेत्र के सभी हथकण्डों से आप भली भाँति परिचि
यदि लेखक से एक मुश्त रुपया देकर पुस्तक के प्रकाशन के
जायें तो कम से कम रुपये दिये जायें और यदि कोई जिद्दी
ही लेने पर आमादा हो जाये तो बच्चू की किताबें छापी
और हिसाब दिया जाये एक हजार का। दूसरे संस्करण
सूचना से भी उसे महरूम रक्खा जाये और रायल्टी का
जाये जब वह कम से कम रायल्टी के आधे दामों के जूते
आते घिस डाले।

उस दिन बाबू गंगासहाय का मूड कुछ उखड़ा सा
बातचीत करने की तबियत भी नहीं हो रही थी। दूकान
थे कि अपनी ढेर सारी पाण्डुलिपियों को बगल में दबाये
आ टपके। गंगासहाय को नमस्कार किया और बोले—
आप मिल गये। अन्यथा आज फिर मुझे निराश होकर

हले भी दो-चार बार आपकी सेवा में आ चुका हूँ गंगासहाय जी !— और लेखक ने अपनी बगल से पाण्डुलिपियों का बंडल उनकी टेबल पर जोर से रखा।

बाबू गंगासहाय ने अपना चश्मा साफ करके लेखक को एड़ी से चोटी तक गौर से देखा। छरहरा बदन। उम्र कोई पैंतीस वर्ष के लगभग। धोती-कुर्त्ता और शाल में लेखक का व्यक्तित्व खूब निखर रहा था। बोले—तशरीफ रखिये !

मैं आपके व्यवहार से सतुष्ट हुआ — लेखक महाशय हसरत-भरी नजरों से उनकी ओर देखते हुए बैठ गये।

बाबू गंगासहाय ने पूछा—कहिये क्या सेवा कर सकता हूँ आपकी ?

लेखक ने कहा—जी, मैं अपने उपन्यास और कहानी संग्रहों की पाण्डुलिपियों को ले आया था। आप इन्हें निरखकर परख लीजिए और अगर आपकी कसौटी पर मेरी रचनाएं खरी उतर जावें तो आपके प्रकाशन से इन्हें छपवाकर मैं धन्य हो जाऊँगा।

आप इन्हें छोड़ जाइये। मैं फुर्सत के समय देखकर आपको अपने निर्णय की सूचना दे दूँगा। हाँ आपका पता या फोन नम्बर जहाँ आपको सूचना भिजवाई जा सके, लिखा दीजिए—गंगासहाय ने लेखक को टालने के लिहाज से कहा।

किन्तु लेखक महाशय भी कोई चोट खाये हुए लगते थे। छूटते ही बोले—अजी इस ताजे समय के अतिरिक्त पांडुलिपियाँ देखने का अच्छा समय और कौनसा हो सकता है। देखिये मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि ये पाण्डुलिपियाँ यश, प्रतिष्ठा और सामाजिक सुविधाओं के ख्याल से परे रहकर की गई साधना का परिणाम हैं। इनका उचित मूल्यांकन आप जैसे समर्थ प्रकाशक ही कर सकते हैं। आप थोड़ा कष्ट करके इन्हें देख लीजिए —लेखक महोदय टलने वाले नहीं दिखते थे।

बाबू गंगासहाय ने आफत टालने के लिहाज से पाण्डुलिपियाँ देखनी शुरू कर दीं। उन्हें देखा और कुछ पृष्ठ पढ़े तो वे आश्चर्यचकित रह गये। सचमुच लेखक की ये रचनाएँ अत्यन्त सशक्त थीं। भाषा प्रांजल और शैली मार्मिक थी। उनकी रचनाएँ किसी भी प्रसिद्ध लेखक की रचनाओं की पंक्ति में रखी जा सकती थी। बाबू गंगासहाय उनके लेखन से इतना प्रभावित हुए कि पुस्तकों को बार-बार देखा और पढ़ा। किन्तु जब लेखक का नाम मालूम किया तो अपने सर को पीटने की इच्छा हुई उनकी। लेखक की आज तक कोई पुस्तक नहीं छपी थी और न उनकी किसी रचना ने किसी प्रतिष्ठित पत्र अथवा पत्रिका में स्थान पाया था। ऐसी स्थिति में उसकी इतनी बड़ी पुस्तकें छापने के फल का उन्हें पूर्वाभास हुआ तो वे थोड़ा घबराये। लेखक महोदय उनका निर्णय सुनने को अत्यन्त व्यग्र हो रहे थे। थोड़ी देर के सोच-विचार के बाद उनके कान के करीब अपना मुँह ले जाकर बाबू गंगासहाय ने धीरे से कहा—आपकी सब पुस्तकें छापने को हम तैयार हैं।

लेखक महोदय के मन की कली खिल गई जैसे। वे मन ही मन बेहद प्रसन्न हुए। किन्तु प्रसन्नता की यह रेखा तुरन्त ही विषाद और निराशा में बदल गई, जब बाबू गंगासहाय ने उनसे कहा—लेकिन ये पुस्तकें आपके नाम से नहीं छापी जा सकेंगी।

फिर आप इन्हें किसके नाम से छापेंगे—लेखक ने उत्सुकता से पूछा।

केशवराज जी के नाम से। इनका नाम तो आपने सुना ही होगा। देशभर के लेखकों में सबसे ऊँचा नाम है इनका। इन्हीं के नाम से किताबें छप सकेंगी और फिर जैसे लेखक महोदय को आश्वस्त करते हुए बाबू गंगासहाय ने कहा—आप चिन्ता न करें। केशवराज जी से हम खुद बात तय कर लेंगे। आपसे तो सिर्फ दाम तय करने हैं, और तय भी क्या करना है? आपको इनके मुँह माँगे रुपये मिलेंगे। कहिये क्या ख्याल है आपका?

बाबू गंगासहाय ने देखा—लेखक के चेहरे पर घृणा और निराशा के

बहुत से भाव उभर आये हैं। उसने खड़े होकर अपनी पाण्डुलिपियों को सम्भालते हुए कहा—क्षमा कीजिये गंगासहाय जी, मुझे आपके विचार जानकर बहुत दुःख हुआ। मुझे पता नहीं था कि आप जैसा प्रतिष्ठित प्रकाशक मेरे सामने ऐसा हीन और गिरा हुआ प्रस्ताव रख सकता है। आप साहित्य को साधना नहीं व्यवसाय समझते हैं, और अपने लेखन से मुझे व्यवसाय नहीं करना है।

लेखक महोदय जाने को हुए तो बाबू गंगासहाय ने उन्हें रोकते हुए कहा—एक बार फिर ठण्डे दिल से सोच लीजिये। इधर आपने ये पुस्तकें दीं, उधर मैंने चाँदी आपके हाथों में रखी।

मैं अपने विचार आपके सामने रख चुका हूँ। मैं आपकी और भर्त्सना करूँ इसके लिए मजबूर मत कीजिए — लेखक महोदय ने अपनी पाण्डुलिपियाँ उठाईं और उठकर वापस चले गये।

बाबू गंगासहाय को लेखक महोदय का यूँ उपेक्षा भाव से वापस चला जाना बहुत बुरा लगा। आज तक बहुत से नाम लेखकों को उन्होंने रुपयों का प्रलोभन देकर इस प्रकार स्वयं की पुस्तक दूसरे के नाम से छपवाने और कम पैसे देकर अधिक रुपयों की रसीद लिखवाने आदि कामों के लिए राजी किया था। किन्तु आज पहली बार एक लेखक उनके प्रलोभन को बड़े निर्विकार भाव से ठुकराकर चला गया था। आज उन्होंने स्वयं को अत्यन्त अपमानित और प्रताड़ित अनुभव किया। हीनभाव की एक रेखा उनके अन्तर में यहाँ से वहाँ तक पैठ गई। उनके चेहरे में अजीब सी निराशा और मुर्दनी छा गई। वे स्वयं को अत्यन्त हताश और थका हुआ महसूस करने लगे। तभी सामने आते हुए प्रसिद्ध लेखक केशवराज जी पर उनकी नजर गई। वे बाबू गंगासहाय की दुकान में ही आ रहे थे। गंगासहाय ने स्वयं को सम्भाला और एक रूखी सी मुस्कान अपने चेहरे में लाते हुए उनके स्वागत में खड़े हो गए।

आइये केशवजी, तशरीफ लाइये— उन्होंने बैठते हुए कहा।

केशव जी को गंगासहाय के चेहरे पर छायी मुर्दनी को पहचानते देर नहीं लगी। वे बोले—क्यों गंगासहाय जी, आज कुछ अधिक परेशान दिखते हैं ? क्या कोई खास बात हो गई ?

गंगासहाय को इस समय सहानुभूति की बड़ी जरूरत थी। लेखक के जाने के बाद उन्हें यही लग रहा था कि कोई उनकी बात को सुने और उनके प्रस्ताव को उचित ठहराते हुए उनके प्रति सद्‌भावना व्यक्त करे। गंगासहाय छूटते ही बोले—अजी परेशानी क्या है ? आज सुबह-सुबह एक मुफलिस लेखक आगया था। पहले तो अपनी पुस्तकें छपवाने के लिए मिन्नत करता रहा। किन्तु जब मैंने प्रकाशन की शर्त रक्खी तो पुस्तकें लेकर भागता हुआ नजर आया।

यद्यपि गंगासहाय ने यह बात साहस बटोरकर की थी तथापि वह जानता था कि लेखक ने उसे बुरी तरह पराजित कर दिया था।

तो क्या उसने आपका प्रस्ताव माना नहीं ?—केशव जी ने प्रश्न किया।

अजी बस पूछिये मत। कहने लगा— मैंने ये पुस्तकें धन या सामाजिक प्रतिष्ठा की आकांक्षा से नहीं लिखीं। आप साधना को व्यवसाय समझते हैं ? और केशवजी की सहानुभूति प्राप्त करने की गरज से कहा-अब आप ही बताइये, था न वह करमठोक। मैंने तो उसे यहाँ तक कह दिया था कि उसकी सभी पुस्तकें आपके नाम से निकाल दूंगा। बल्कि मैंने मुंह मांगे रुपये देने को भी कहा था। लेकिन हजरत ऐसे निकले कि कुछ कहा न सुना सीधे पाण्डुलिपियाँ उठाकर रवाना हो गए।

मूर्ख था वह—केशवराम ने ढीला से कहा—मेरा नाम और आपका प्रकाशन। क्या उसके लिए सौभाग्य की बात नहीं थी ?

गंगासहाय उनकी बात सुनकर मन ही मन बहुत खुश हुए। दरअसल उन्हें यही कुछ सुनने की तमन्ना थी। उत्साहित होकर बोले— अजी साहित्य साधना में क्या धरा है ? सुबह शाम की रोटी भी नहीं मिलती। आजकल

तो पाठकों की माँग का साहित्य लिखा जाता है। यश, मान, प्रतिष्ठा सब कुछ पैसे से हासिल हो जाती है।

गंगासहाय जी, सच पूछिये तो बिना पूँजी का व्यवसाय है यह। आप ही कहिये हम लेखकों को चन्द कागज के टुकड़ों के अलावा क्या खर्च करना पड़ता है? यह तो आप जैसे प्रकाशकों की कृपा है। नए से नए लेखकों को प्रसिद्धि के शिखर पर चढ़ा देते हैं– केशवराज ने उन्हें उत्साहित करने की दृष्टि से कहा। गंगासहाय का मन बाग-बाग हो गया। इतना बड़ा नामी लेखक और उनकी मुक्तकंठ से प्रशंसा कर रहा है। उन्हें महसूस हुआ जैसे उनकी सारी थकान मिटती जा रही है।

केशवराज ने फिर कहा–मैं भी साहित्यकार हूँ। साहित्य जगत में इतना नाम होने के बाद भी आपके माध्यम से पुस्तक छपवाकर स्वयं को गौरवान्वित अनुभव करता हूँ। सच पूछिये तो साहित्य सृजन दुकानदारी है, और आप एक पारखी व्यापारी।

बाबू गंगासहाय के मन का कलुष जाता रहा और वे स्वयं को बहुत ताजा अनुभव करने लगे। तभी केशवराज ने अपने बैग से अपनी एक नई पाण्डुलिपि निकालकर गंगासहाय की टेबल पर रक्खी और कहा–इस बार यह उपन्यास मैं सबसे पहले आपके पास लाया हूँ। अच्छी कीमत देंगे तो मार्केट की माँग की कुछ और चीजें भी दूँगा।

बाबू गंगासहाय काफी प्रसन्न थे। उन्होंने दो सौ रुपयों का चेक काट कर केशवराज को देते हुए कहा–बाकी किताब छापने पर।

केशवराज चैक लेकर चले गए। गंगासहाय ने सोचा— यह कितना समझदार लेखक है। समय की रफ्तार को पहचानता है। सचमुच आज ऐसे ही लोगों के माध्यम से लेखकों और प्रकाशकों के बीच समन्वय हो सकता है। उसने सोचा— एक यह आदमी है और एक वह.......उसने पहले लेखक के विषय में सोचा और घृणा से अपना मुँह बिदका दिया। किन्तु पराजय का एक कम्पन फिर उसकी रग-रग में दौड़ने लगा था।

गूंज

नितिन अभी अधिक दूर नहीं गया था। सुरेखा ने सोचा कि वह उसे पुकार ले। किन्तु न जाने क्या सोचकर उसने उसे जाने दिया। कुछ ही क्षणों में सड़क की भीड़ में खोकर वह उसकी आंखों से ओझल हो गया।

सुरेखा सोच रही थी कि उसने व्यर्थ ही नितिन का प्रस्ताव ठुकरा दिया। नितिन को इससे क्षोभ हुआ होगा। वह भावुक है। हर बात को 'सीरियसली' लेता है। आज तो उसने बहुत ही आग्रहपूर्ण मुद्रा में कहा था। यदि कुछ क्षण 'इटालिया रेस्तरां' में बैठकर उसके साथ काफी पी लेती तो उसका क्या बिगड़ जाता।

नितिन ने पूछा था—कहां जा रही हो सुरेखा? आओ कुछ देर 'इटालिया' में बैठकर 'एस्प्रेसो काफी' का आनन्द लिया जाये। आज तुम्हारे साथ चलकर इस नये रेस्तरां का उद्घाटन करें।

सुरेखा कुछ क्षण ठिठकी। एक तो इसलिये कि उसने उस समय नितिन के मिलने की आशा नहीं की थी और दूसरे वह आज सुबोध से मिलना चाहती थी। नितिन की उपस्थिति में सुबोध से मिलना उसे कुछ कुछ अजीब सा लगता। अतः उसने नितिन को टालने के लिहाज से कह दिया—सॉरी नितिन, अभी मेरा अपनी 'फ्रेंड्स' के साथ 'अपाइन्टमेन्ट' है।

सच, कब तक जाना होगा?

जस्ट नाऊ। बस, वहीं आ रही हूँ।

तो फिर....?

फिर कभी—कहकर वह सड़क के एक ओर बढ़ आई। नितिन के चेहरे पर निराशा के चिन्ह से मात्र तिर आये। वह थका सा सड़क पर दूसरी ओर बढ़ गया। सुरेखा को लगा जैसे उसके मूड ने नितिन को लौटने पर मजबूर कर दिया है, और तभी एक क्षण उसके मस्तिष्क में विचार आया कि वह उसे आवाज देकर रोकले। पर उसके होंठ नहीं खुले, शब्द नहीं जागे।

कल सुबोध ने उसे फोन पर कह दिया था—वह जरूर 'इटालिया' के बाहर उसकी प्रतीक्षा करेगा और उसी के अनुसार वह निर्धारित समय के पूर्व ही वहाँ पहुंच गई थी। किन्तु वहां सुबोध नहीं था।

सुरेखा ने सोचा—क्यों वह उसके झूठे वादों पर यूं खिंच आती है? सुबोध की यह पुरानी आदत है। एक ही समय में सबसे मिलने के वादे। और वह एक भी पूरा नहीं कर पाता। जिसे मिल जाय, बस, उस क्षण उसी का हो रहता है। आज भी ऐसा ही हुआ है। या तो आफिस से निकलकर अपने चित्रकार मित्र के साथ चला गया होगा, या टेबल टेनिस में उलझ रहा होगा, या फिर यूनिवर्सिटी के 'स्विमिंग पूल' में अपने दोस्तों के साथ तैर रहा होगा, या कहीं और। अजीब हैं उसके दोस्त। उसे हर क्षण घेरे रहते हैं। इसीलिये सुरेखा की बात भी उससे बहुत कम हो पाती है।

सुरेखा को इस स्थिति से संतोष नहीं। आखिर व्यस्तता का ऐसा माहौल भी क्या। कई बार उसने चाहा— सुबोध से बहुत कुछ कहे लेकिन हर बार उसका प्रयास विफल रहा। जाने किन्-किन बातों में उलझा देता है वह उसे। अपनी यात्राओं के अजीब और निराले संस्मरण। मजाकिया किस्से। फिल्मों की बात और पत्रिकाओं में छपी नई कहानियों की चर्चा। कभी कुछ कहने का अवसर ही नहीं देता। उसकी आंतरिक मांग के

चेहरे पर कभी गम्भीर भाव नहीं बनते। उसी के बा
की छिपी गम्भीर बात का जिक्र नहीं कर पाती।''''''''
त्रा के मन का बांध टूट-टूट जाना चाहता है।

सुबोध नहीं आयेगा। उसने मन ही मन तय पाया।
या। जिति को वह जानबूझकर साथ नहीं लाई। एक
सरी नजर सड़क पर दौड़ाई। उसकी नजर एक जोड़े पर
र आकर्षक था। तभी किसी मोटरकार के हार्न से वह
के धुंधलके में अब सड़क पर चल रही भीड़ की पर-
ी जा रही थी। उसने रेस्तरां में जाने के बजाय वाप
य किया और सड़क पर बढ़ने लगी।

लानि से भर आया। वह कुछ निश्चय नहीं कर पा रहे
निश्चय की स्थिति। यह उसे जहां-तहां पकड़ लेती है
ीवन की स्थिति बनी हुई है। चौबीस वर्ष पार करने
भी निश्चय नहीं कर पाई थी। ऐसे स्थलों पर भी
ुकी थी जिनके लिये सम्पूर्ण रूप से वही जिम्मेदार
निश्चय की इन स्थितियों के बीच वह आखिर कब तक
एक बार जिति ने कहा था—दीदी, विवाह से पूर्व यदि
ी पति की कोई खास कल्पना करे। मसलन उसका
र बोलचाल आदि की कोई शक्ल बनाकर रखे तो
हाथ लगती है। तुम अपने होने वाले जीवन साथी
ती हो। जानती हो, यही एक चीज है जो बिना
ाती है और बजाय उसको परखने के स्वयं को बस
रना होता है।

की माँ है। शायद इसीलिये उसे इस प्रकार बातें-
की आदत पड़ गई है। सुरेखा हर बार जिति की

बातों के प्रति अनास्था दिखाकर उसके व्यस्त भाव से कतराने लगती है। हो सकता है जिति सही हो। यदि वह स्वयं में झांककर देखे तो " तो क्या उसकी बातों की सत्यता से इन्कार कर सकती है। शायद नहीं"'आज उसे उसकी यह बात बार-बार याद आ रही है।

वह जिति की भाँति अपने आपको स्थितियों के हवाले क्यों नहीं कर देती। जिति के विवाह की पहली बार बात चली और रिश्ता तय हो गया।

सुरेखा के लिये उसके मामा जिस आदमी से रिश्ता करने की बात लाये थे, वह भी बुरा नहीं था। अच्छा लम्बा-चौड़ा स्वस्थ आदमी, 'एकाउन्ट्स आफीसर' के पद पर काम कर रहा था। फिर क्यों उस रिश्ते को उसने महज यह कहकर टाल दिया कि उसे एकाउन्ट्स में रुचि नहीं। भला 'एकाउन्ट्स आफीसर' से शादी करने के लिए एकाउन्ट्स में रुचि हो, इसमें क्या तुक है?

पर नहीं, शायद उसने अपने मन के किसी कोने में छिपी अपने काल्पनिक जीवन साथी की तलाश के वशीभूत होकर ही ऐसा किया। मात्र तलाश ही नहीं वरन् वह पिछले दिनों से इसके निर्माण में भी रुचि लेने लगी है।

सुबोध चेन स्मोकर है। सुरेखा को सिगरेट पीना अच्छा नहीं लगता वह उसे कई बार सिगरेट पीने से मना करती है। निर्तिन स्वयं सुरेखा के सामने सिगरेट पीने से हिचकता है। निर्तिन को वह और भी कई बातों में टोक देती है। यह भावना उसमें पिछले कुछ वर्षों से पनपी है। किन्तु सुरेखा जानती है-वह कभी कोई निर्णय नहीं ले पायेगी। अनिश्चय की अनेक स्थितियों के बीच डूबते-उतराते आज भी वह उसके घेरे से बाहर नहीं निकल पाई है।

उसे याद है बचपन में वह कई बार यह भी निर्णय नहीं कर पाती

थी कि वह स्कूल जाये या न जाये। सभी कुछ यूं ही होता गया। वह निश्चय-अनिश्चय के बीच झूलती रही और स्कूल की पढ़ाई खत्म हो गई। कालिज से भी निवृत्ति पा ली और अब पिछला वर्ष यही सोचते गुजर गया कि वह एम. ए. ज्वाइन करे या न करे। जिति ने इन्टर के बाद शादी की स्वीकृति दे दी। स्वयं उसके मामा ने जो चौदह वर्ष की उम्र के बाद जिति और सुरेखा दोनों बहनों के एकमात्र संरक्षक थे, कई बार शादी के लिये आये प्रस्ताव उसके सामने रखे पर वह स्वीकृति नहीं दे पाई।

फिर सुबोध उसके जीवन में आया। सुरेखा को लगा जैसे उसका काल्पनिक हीरो सुबोध में ही अपनी तस्वीर इख्तियार करेगा। वह भी उसके निकट सम्पर्क में आने की चेष्टा अनजाने ही करती रही। किन्तु सुबोध का परिचय अनेक लोगों से था। और उसके हमउम्र मित्र भी बहुत सारे थे। उसके मृदुभाषी एवं अल्हड़ स्वभाव के कारण ही सुरेखा उसकी ओर खिंची थी। वह भी सुरेखा से प्रभावित रहा था। किन्तु वह चाहकर भी उससे मिलने का समय नहीं निकाल पाता।

नितिन अपेक्षाकृत स्वयं सुरेखा के प्रति आकर्षित और समर्पित रहा। सुरेखा उसकी अवहेलना भी नहीं कर पाती और उसमें विशेष रुचि भी नहीं ले पाती। नितिन उसके इस तटस्थ भाव से संतुष्ट था। किन्तु सुरेखा के मन की शान्त लहरों में अब प्रायः हलचल रहती। एक बार फिर उस पर अनिश्चय की स्थिति हावी हुई जा रही थी।······

कुछ दूर चलने पर उसे एक आकृति दिखाई दी। जिस पुरुष का पृष्ठ भाग वह देख रही थी वह ठीक नितिन के डील-डौल का था। वही कद, वही स्वास्थ्य, वही कपड़े। शायद नितिन बीच में कहीं रुक गया होगा। वह करीब आई।

सुनो नितिन–उसने उसके कन्धे को हल्के से छुआ।

जी, मैंने आपको पहचाना नहीं–उस युवक ने मुड़कर देखा और कहा।

ओह ! आइ एम सॉरी–सुरेखा बहुत घबरा गई। उसने देखा अजनबी युवक के चेहरे पर सहानुभूति के भाव घिर आये थे। वह कुछ क्षण रुका और अपनी राह चल दिया।

सुरेखा का मन धक-धक करने लगा था और पाँव काँपने से लगे। कुछ दूर पैदल चलकर उसने रिक्शा किया और घर पहुँच गई।

घर में नितिन मौजूद था और लान में जिति के बच्चों से खेल रहा था। सुरेखा को आया देखकर कुछ आश्चर्य में पड़ गया। असल में आज उसे सुरेखा के इन्कार से ठेस पहुँची थी। वह खिन्नमन जिति से अपनी कुछ पुस्तकें लेने आया था, ताकि एकान्त में घर बैठकर उन्हें पढ़े और अपना मन लगा सके।

सुरेखा नितिन को देखने के बाद भी कुछ नहीं बोली। चप्पलें खोलकर ड्राइंगरूम की ओर जाने लगी। तभी नितिन ने कहा–तुम इतनी जल्दी कैसे लौट आई? क्या सुबोध नहीं मिला?

एं ! वह सकपका गई जैसे चोरी करते रंगे हाथों पकड़ी गई हो।

तुम्हें कैसे मालूम कि मैं सुबोध से मिलने गई थी?–सुरेखा का चेहरा पीला पड़ने लगा पर नितिन उसे नहीं देख पाया क्योंकि बल्ब का प्रकाश उसके चेहरे पर नहीं पड़ रहा था।

बस, तुम तो यही सोचते रहते हो। असलियत को जरा नहीं पहचानते–कहते-कहते सुरेखा का गला भर आया। यदि वह अधिक देर वहाँ ठहरती तो शायद रो पड़ती। इतना कहकर वह अपने कमरे में चली गई।

नितिन ने सोचा–इस समय सुबोध का नाम लेकर शायद उसने अच्छा नहीं किया। इससे सुरेखा के मन को ठेस पहुँची है।

पहले कुछ देर तो वह बाहर लान में बैठा हो सुरेखा की प्रतीक्षा करता रहा। किन्तु जब बहुत देर बाद भी वह नहीं आई तो स्वयं सुरेखा के कमरे में जा पहुँचा।

उसने देखा– सुरेखा पलंग पर बैठी तकिये से अपना मुंह ढांपकर रो
है। उसकी सिसकियाँ बढ़ती जा रही हैं। कुछ क्षण नितिन अन्यमनस्क
से सिसकते देखता रहा। फिर सुरेखा के करीब जाकर धीमे स्वर में
–क्यों, बुरा मान गई हो सुरेखा ? मैंने तो वैसे ही तुम्हें चिढ़ाने के
कह दिया था। मुझसे भूल हुई, माफ कर दो।

तभी सुरेखा अपने आँसू पोंछती हुई पलंग से उठ खड़ी हुई बोली–
बातें करते हो। भला तुम्हारा क्यों बुरा मानूंगी। मेरी किस्मत ही
है, नितिन। बस छोटी-छोटी बातों पर आँसू निकल आते हैं।

क्यों छलकने देती हो इन्हें ?

तो रोकूं भी कैसे ?

मन की बात कहकर। दुख बांटने से मन का भार हल्का हो जाता
ता !– नितिन रेखा के ओर नजदीक आगया।

कितने लोग हैं नितिन, जो मन की बात कह पाते हैं–सुरेखा ने उसी
भाव से कहा जिसमें वह डूबी हुई थी।

नितिन कुछ क्षण चुप रहा। फिर सुरेखा को सम्भलते देख बोला–हाँ
मैं भी बहुत दिनों से तुम्हें अपने मन की बात कहना चाहता हूँ।
दाव रखना चाहता हूँ तुम्हारे सामने। किन्तु आने क्यों नहीं कह
मैंने सोचा था आज तुम्हें सब कुछ कह दूंगा। लेकिन शायद
मूड ठीक नहीं है।

रेखा को लगा जैसे नितिन से वह बहुत कुछ सुनने को आतुर है।
र प्रस्ताव पर ही कहने की आकांक्षी है। उसकी इच्छा हुई कि वह
को दोनों हाथों से पकड़कर झकझोरे और कहे कि कहने को कुछ
वह इसी समय कहदे। सचमुच वह अपनी अनिश्चय की स्थिति से
है। घबरा गई है।

पर उसने ऐसा कुछ नहीं किया। उसे लगा जैसे उसके गिर्द एक हरित आभा तैरने लगी है। उसे पहली बार अपनी स्थिति पर संतोष हो रहा था। निशिन द्वारा कहे गये शब्दों के अन्तर भाव को समझते हुए प्यासी आंखों से उसे देखा भर। निशिन मुस्कुरा दिया। सुरेखा को, लगा जैसे निशिन के शब्दों की गूंज उसके अन्तर में गहरे तक पैठती जा रही है… ❖

खुशी के आंसू

वह अक्सर अपने दोस्त रमेश को ही अपनी कठिनाइयों से परिचित कराता। उसे बताता कि किस तरह वह एक छोटी और बंधी-बंधाई तनख्वाह में अपने परिवार का पालन-पोषण करने में असमर्थ है और उसके परिवार के लोग किन-किन मुसीबतों से गुजर रहे हैं। उसका दोस्त रमेश उसे बुद्धू कहता और समझाता कि जो आदमी किसी के मातहत नौकरी करता है वह इसी तरह जीवन भर मुसीबतों से गुजरता रहता है। रमेश ने उसे कई बार राय दी थी कि वह प्राइवेट कम्पनी की अपनी डेढ़ सौ रुपल्ली की नौकरी को तलाक् दे दे और वही धंधा अपना ले, जो रमेश स्वयं करता है। किन्तु उसे यह पता नहीं चल सका कि वह क्या धंधा करता है। आग्रह करने के बाद भी रमेश इतना ही कहता—दोस्त नरेन्द्र, मैं ऐसा धंधा करता हूँ जिसमें मेहनत कम है और फायदा ज्यादा। और फिर अपने कथन की पुष्टि करते हुए बताता—तुम तो देखते हो, ये बिजनैस मैन कितना कमाते हैं। ये लोग तो एक दिन में ही इतना नावाँ मार लेते हैं जितना तुम लोगों को सालभर में भी नहीं मिलता। मैं भी ऐसा ही बिजनैस करता हूँ।'''

नरेन्द्र को वह कई बार अपने साथ धंधा करने का निमंत्रण भी दे चुका था। पर एकाएक बंधी-बंधाई नौकरी को छोड़ कर बिना किसी पूंजी के ऐसा करना सम्भव नहीं हो पा रहा था। रमेश ने तो उसे यह भी कहा था कि उसके साथ बिजनैस करने में उसे कुछ भी खर्च नहीं करना पड़ेगा। किन्तु अब शायद उसे वही कुछ करना पड़ेगा जो रमेश

बतायेगा। निश्चय ही रमेश को बिजनैस में काफी लाभ होता होगा, उसने सोचा। वह उसे बचपन से जानता है और उसका गहरा मित्र है। साथ साथ पढ़े, साथ-साथ खेले।

वह तो जैसे-तैसे कॉलेज में दाखिल हो गया। पर रमेश जाने किस धंधे में लग गया और दिन दूनी रात चौगुनी तरक्की करने लगा। अब उसका रहन-सहन नरेन्द्र से कई गुना बेहतर है। नरेन्द्र की पत्नी को जहाँ महीनों तक एक ही साड़ी पहननी पड़ती है, वहाँ रमेश की पत्नी के पास इतनी अधिक साड़ियाँ हैं कि चुनाव करना कठिन हो जाता है कि वह कौनसी साड़ी पहने। गहने, कपड़े, फर्नीचर और सुख-सुविधा के सभी साधन रमेश को उपलब्ध हैं। और फिर बंधी-बधाई ड्यूटी भी नहीं। दिनभर स्वच्छन्द होकर घूमो और रुपया पा जाओ। नरेन्द्र को रमेश की तरक्की से कभी ईर्ष्या नहीं हुई। किन्तु आश्चर्य अवश्य होता रहा।

इन दिनों नरेन्द्र की माली हालत अभाव की पराकाष्ठा तक पहुँच चुकी है। बाजार में सभी चीजों के भाव बढ़ गये हैं। किन्तु तनख्वाह वही डेढ़ सौ रुपया। ऑफिस में कुछ कहो तो सीधा जवाब मिलता है–कोई दूसरी नौकरी ढूंढ लो। घर में बूढ़ी मां–है वह बीमार। पिछले कुछ महीनों में उसकी पत्नी भी बराबर अस्वस्थ है। तीन छोटे-छोटे बच्चे हैं जिनको न ठीक तरह से भोजन मिलता है न पढ़ाई-लिखाई की सुविधा। मनोरंजन के विषय में तो सोचने का सवाल ही नहीं उठता। उस पर बढ़ा हुआ मकान किराया। आर्थिक कठिनाइयों के साथ-साथ उसके मन पर चिन्ता का भार भी बढ़ रहा है। काफी सोच-विचार के बाद नरेन्द्र ने यह निश्चय किया कि वह भी वही बिजनैस करेगा जो रमेश करता है।

उसने उसी शाम रमेश से कहा–दोस्त, अब पानी मेरे गले तक आ गया है। मैं यह डेढ़ सौ रुपयों की नौकरी छोड़कर कोई अच्छी आमदनी वाला धंधा करना चाहता हूँ। बल्कि वही करना चाहता हूँ जो तुम

रमेश नरेन्द्र की बात सुनकर थोड़ा मुस्कराया और बोला—अच्छा तो
के भेजे में अक्ल आ गई। मैंने तो पहले भी कहा था—यह कलम
करते-करते एक दिन तुम भी कलम के शहीद हो जाओगे। प्यारे,
म्हारे सामने खुली पुस्तक की तरह पड़ा है। तुम चाहो तो आज
कर सकते हो।

मेश उसे अपने साथ एक दफ्तर में ले गया और वहां के मालिक
ा परिचय करा दिया। उसे उसी दिन से नियुक्त कर दिया और
; तय हुई पांच सौ रुपया माहवार। काम सिर्फ इतना कि यदाकदा
ाले बॉस के निर्देशों का निष्ठापूर्वक पालन करना। दिन में एक
ी भी आफिस पहुँचना और घर से इधर-उधर होने पर एक
जगह पर फोन द्वारा अपनी उपस्थिति की सूचना देना।

रेन्द्र को नौकरी पसन्द आ गई। कहां वह आठ घंटे की दफ्तर
र घिसाई और कहाँ यह स्वच्छन्द घूमना ! कोई बंधन, कोई ताकीद
लगभग डेढ़ माह तक उसे कोई भी काम नहीं बताया गया।
समय पर मिल गई। उसे आश्चर्य भी हुआ और आनन्द भी।
तो इसलिये कि उसे बिना कोई काम किये इतने रुपये कैसे दे दिये
आनन्द इसलिये कि आज पहली बार उसे एक अच्छी खासी
ख्वाह के रूप में प्राप्त हुई।

क दिन जब नरेन्द्र अपने कार्यालय में पहुँचा तो उसे बॉस ने
ौर चाबियों का एक गुच्छा उसके हाथों में थमाते हुए कहा—
: हरे रंग का ट्रक खड़ा है। उसका सामान स्टोर में आनी
ें रखवा दो। हां, सब काम सावधानी से होना चाहिये।
न्द्र ने चाबियां अपने हाथ में ले लीं और स्टोर का पता पूछा तो
मुस्काते हुए कहा—तुम बिल्कुल बेवकूफ हो। आओ, ड्राइवर को

वह चला आया। उसकी समझ में नहीं आया कि बॉस ने उसे बेवकूफ क्यों कहा। उसने सोचा–शायद बॉस का मिजाज गरम है इसीलिये उसने ऐसा कहा होगा। बाहर आकर उसने देखा कि जो हरे रंग की ट्रक गाड़ी खड़ी है उसमे सिवाय घास के और कुछ नही है। एक बार तो उसकी इच्छा हुई कि वह पुनः बॉस से पूछे। पर फिर जाने क्या सोचकर रुक गया। उसने ड्राइवर से कहा–स्टोर में चलो।

ड्राइवर ने ट्रक स्टार्ट कर दी। थोड़ी दूर शहर में चलने के बाद ट्रक एक सुनसान बस्ती की ओर बढ़ी। नरेन्द्र चुपचाप रास्ते के पेड़ और मकानों को देखता रहा। थोडी देर चलने के बाद ट्रक एक अजीब से भद्दे मकान के दरवाजे पर रुका। दरवाजा बहुत बड़ा था। ड्राइवर ने नरेन्द्र से चाबी लेकर उसे खोला और ट्रक को अन्दर के बहुत बड़े आंगन में ले गया। यहाँ भी गन्दगी कुछ कम नही थी। मुख्य दरवाजे को जिससे होकर ट्रक आया था, ड्राइवर ने बन्द कर दिया और ट्रक से घास उतारना आरम्भ किया। नरेन्द्र ने देखा-ट्रक में केवल घास ही नहीं है, बल्कि घास के अन्दर छिपे हुए सौ-पचास मजबूत गत्तों के डिब्बे हैं। एक डिब्बे को खोलकर उसने देखा। डिब्बे मे इंजेक्शन और साफ किये हुए पानी की सैकड़ों छोटी-छोटी बोतलें थी। वह आश्चर्य में पड़ गया। ट्रक में घास, घास मे डिब्बे और डिब्बों में इंजेक्शन की शीशियां। वह कुछ भी नही समझ पाया।

ड्राइवर ने सामने की दीवार के एक छोटे से दरवाजे को खोला। नरेन्द्र दरवाजे के अन्दर गया तो उसने देखा कि वहाँ एक विशाल हाल है जिसमें और भी अनेक मजबूत दरवाजों के पलस्तरशुदा कमरे हैं। हाल में अनेक ड्रम, लोहे के पीपे, डिब्बे, शीशियां और बोरियां रखी हैं। उसके आश्चर्य का ठिकाना नही रहा। बाहर से जो मकान इतना भद्दा और टूटा फूटा है अन्दर उसके कमरे इतने मजबूत और अच्छे और फिर यहां बिजली, पानी की भी पूरी सुविधा है। रसोई-घर, गुसलखाना, रहन-सहन के पूरे

गायब उपलब्ध है। उसकी जिज्ञासा हुई कि वह हाल में पड़े सामान को देखे। जब तक ड्राइवर ट्रक से सामान उतारता रहा तब तक वह कुछ और डिब्बे खोलकर देखता रहा। वह आश्चर्यचकित रह गया, जब उसे पता चला कि वहां और कुछ नहीं बल्कि उन्हीं वस्तुओं का संग्रह है जो लोगों के दैनिक जीवन में काम आती हैं। उसने देखा मिट्टी के तेल के सैकड़ों पीपे वहां पड़े हैं। चीनी और गेहूँ की बोरियां, सीमेंट के हजारों थैले। इंजेक्शन और दवाइयां। वनस्पति घी के डिब्बे उसे एकाएक ख्याल हो आया सरकारी गल्ले की दुकान में लगी उस भीड़ का, जहां इन्हीं सब चीजों को प्राप्त करने के लिये दूसरे लोगों के साथ उसे भी एक लम्बी लाइन में खड़ा होना पड़ता है। बाजार में कहीं किसी दुकान पर ये चीजें आसानी से उपलब्ध नहीं होतीं और यहां इस तरीके से बिखरी पड़ी हैं। वह सोचने लगा—इस स्टोर का, इस जमाखोरी का क्या मतलब है। ये इंजेक्शन, ये टीके, ट्रक में घास के अन्दर छिपाकर इस आश्चर्यजनक जगह पर क्यों लाये गये। निश्चय ही यह गैर कानूनी बात है, यह देश-द्रोह है? शहर और देश का एक-एक आदमी जिन वस्तुओं के लिए तरसता रहा है, उन्हीं का यह भंडार आखिर किसके लिये है? उसने सोचा। उसके मन-मस्तिष्क में सन्देह और भय घर करने लगा।

ड्राइवर अब तक सामान रख चुका था। उसने नरेन्द्र से पूरे दो सौ पचास डिब्बे गिन लेने को कहा। उसने डिब्बे गिने और दरवाजा बन्द करके ट्रक में बैठकर वापस ऑफिस आ गया। चाबियां बॉस को दीं और घर आ गया। घर आने के बाद वह निरन्तर उसी सामान के विषय में सोचता रहा। गेहूँ, चीनी की बोरियां और मिट्टी के तेल और वनस्पति घी के डिब्बे उसकी आँखों के सामने घूमते रहे।

कोई दस दिन तक वह फिर बिना काम किये घूमता रहा। इसी बीच रमेश की भेंट भी उससे नहीं हुई। वह किसी काम के सिलसिले में कलकत्ता गया हुआ था।

नरेन्द्र ने इस ऑफिस में नौकरी तो कर ली थी और एक अच्छी खासी रकम भी उसे मिल जाती थी, पर व्यक्तिगत रूप से वह इस बात से संतुष्ट नहीं था कि बिना कोई ठोस काम किये उसे तनख्वाह मिलती रहे। अपने धंधे के प्रति सन्देह उत्पन्न होने के बाद धीरे धीरे उसे यह विश्वास होने लगा था कि उसका बॉस कोई अच्छा धंधा नहीं करता बल्कि स्मगलिंग, जमाखोरी और गैरकानूनी तरीके से व्यापार करता है। उसका असली धंधा वह नहीं है जिसका उसने अपने दफ्तर में बोर्ड लगा रक्खा है, बल्कि भेड़ की खाल में छिपे हुए भेडिये की तरह उसका असल रूप है—काला धंधा।

वह रमेश के आने की प्रतीक्षा करने लगा। उसने सोचा कि रमेश से वह सारी बातें खुलासा करके पूछेगा। आखिर उसकी ड्यूटी क्या है? वह चोर बाजारी में किसी का भागीदार नहीं बनना चाहता। रमेश पूरे एक महीने तक नहीं आया।

इसी बीच शहर में एक भयानक खून की बीमारी फैलने लगी। जन-स्वास्थ्य अधिकारी बीमारी की रोकथाम की कोई युक्ति ढूँढते इससे पहले ही लोग मरने लगे। एक दिन में कोई चार मौतें हो जाती। शहर भर में हलचल मच गई। कुछ लोग तो तुरन्त शहर छोड़कर भाग निकले। डाक्टरों ने बीमारी का एक मात्र इलाज बताया था—डी. के. का टीका। सभी जगह इस टीके के विषय में पोस्टर चिपका दिये गए। बीमार और स्वस्थ दोनों तरह के लोगों को यह टीका लगवाने की सलाह दी गई। सरकार के लिए प्रत्येक आदमी को यह कीमती टीका लगाना सम्भव नहीं था।

इन्जेक्शन के रूप में लगाये जाने वाले इस टीके की कीमत थी चार रुपया और उन दिनों बाजार में उसका अभाव हो रहा था। जिन दूकानों में मिल रहा था, लोग एक-एक टीका तिगुनी कीमत पर बेच रहे थे।

छूत की बीमारी दिन-दिन फैलने लगी। तेरहवें दिन नरेन्द्र की बूढ़ी माँ भी गुजर गई और उसकी पत्नी ने भी खाट पकड़ ली। वह घबरा कर दवाई वालों की दूकान की ओर दौड़ा। किन्तु किसी के पास इन्जेक्शन नहीं मिला। ब्लेक में भी नहीं। निराश लौट रहा था, तो उसकी नजर दीवार पर लगे पोस्टर पर गई। पोस्टर में टीके की शीशी को बहुत बड़ा बनाया गया था। उसकी स्मृति में एकाएक वे इन्जेक्शन घूम गए जिन्हें आज से कुछ दिन पहले उसने उस विशाल हाल में ट्रक द्वारा उतारे गए डिब्बों में देखा था। उसने थोड़ा और देकर सोचा। उसे विश्वास हो गया। ये वही इन्जेक्शन थे। लेकिन उसके बॉस ने इन इन्जेक्शनों को पहले ही कैसे मंगा लिया था? क्या उसे शहर में फैलने वाली इस बीमारी की खबर पहले ही हो गई थी? उसे ध्यान आया कि उसकी पत्नी बीमार है और उसे इस समय इन बातों पर विचार न करके सीधा अपने आफिस जाकर उसके लिए इन्जेक्शन प्राप्त करना चाहिए। उसने शीघ्र ही इन्जेक्शन भी प्राप्त कर लिया। उसे आश्चर्य हुआ कि उन्हें अब बॉस ने अपनी व्यक्तिगत सेफ में रख छोड़ा था।

नरेन्द्र को यह आदेश मिला कि वह आज शाम की गाड़ी से कलकत्ता चला जाय। कलकत्ता में उसे रमेश मिल जायगा और वही जो काम उसे बताये वह करे। अपनी पत्नी को बीमारी की हालत में छोड़कर जाना सम्भव नहीं था किन्तु बॉस ने कहा कि उसकी पत्नी का इलाज यहाँ एक डाक्टर की देख-रेख में पूरी सावधानी के साथ करवाया जायगा। और फिर एक दिन की ही तो बात है। बस रमेश से मिलकर सीधा वापस आना है।

नरेन्द्र को कलकत्ता जाना पड़ा। वहाँ उसकी भेंट रमेश से हो गई। उसे आश्चर्य हुआ जब रमेश ने डी. के. टीकों का एक बक्सा (सूटकेस) थमाकर उसे कहा—इसे लेकर सावधानी के साथ अपने शहर पहुँचना है। दिल्ली तक मेल से और बाद में बस में यात्रा करेंगे हम लोग। मेरे पास

(भ)ी इतना ही सामान है।

दोनों वापस रवाना हो गए। दिल्ली से पहले एक छोटे स्टेशन में उतर जाने के कारण दिल्ली तक उन्हें किसी ने कुछ नहीं पूछा, न सन्देह किया, पर जैसे ही बस में चढ़े, सी. आई. डी. पुलिस के दो आदमी उनके पीछे हो लिए। नरेन्द्र ने देखा कि उन्हें रमेश पर सन्देह है, स्वयं उस पर नहीं। हर स्टाप के बाद उनका सन्देह बढ़ता जाता था। नरेन्द्र ने रमेश को यही बात कही तो वह और भी घबरा गया। उसने आतुर मन से एक विचार किया और मौके की तलाश करने लगा।

नरेन्द्र ने देखा जैसे ही उनकी बस एक लम्बे पुल से गुजरी रमेश ने पुल के नीचे प्रवाह से बहते नदी के जल में अपने सूटकेस को बड़ी होशियारी से फेंक दिया। बस तेजी से आगे निकल गई। पुलिस के दोनों आदमी किसी बात में मशगूल थे। एक दूसरे यात्री ने उसे ऐसा करते देख लिया था, पर रमेश ने उसे चुप रहने के लिए कह दिया।

नरेन्द्र ने सोचा—रमेश ने सूटकेस को नदी में फेंक कर स्वयं को अपराधी सिद्ध होने से बचा लिया है। किन्तु इन सैकड़ों शीशियों को यों पानी में बहाकर क्या उसने अच्छा किया। इन शीशियों से एक नहीं हजारों बेगुनाहों की जान बच सकती थी। पकड़े जाने के बाद तो शायद उसे कुछ ही दिनों की जेल काटनी होती। किन्तु इन इन्जेक्शनों से वह कितने लोगों को काल के मुंह से निकाल सकता था। उसने सोचा—वह स्वयं भी देर-अबेर स्मगलिंग और काले बाजार के अपराध में पकड़ा जायगा, क्यों नहीं, वह भी सूटकेस को गुम कर दे, यहीं छोड़ जाय या किसी दूसरे को पकड़ा दे। किन्तु नहीं, उसके मन ने गवाही नहीं दी। अचानक जैसे एक तराजू उसके सामने डोलने लगा। एक पलड़े में हजारों तड़पते लोग और एक पलड़े में उसका अपना स्वार्थ। उसने अपने समाज के तड़पते लोगों का पलड़ा स्वयं के स्वार्थ से कहीं भारी पाया।

ठिकाना आने के बाद वह बस से उतरा। उसका पीछा करने वाले

सिपाहियों ने सन्देह में रमेश को पकड़ लिया। नरेन्द्र हंसा और बिना कुछ ध्यान दिये जल्दी से रिक्शे में बैठकर निकल गया।

नरेन्द्र पहले न अपने घर गया और न ऑफिस। इन्जेक्शनों से भरे सूटकेस को हाथ में लिए सीधा शहर के उस मुहल्ले में गया जहाँ बीमारी से सबसे ज्यादा लोग तड़प रहे थे। मुहल्ले में एक एम्बुलेंस गाड़ी में अस्थायी अस्पताल की व्यवस्था की गई थी और पाँच-सात डाक्टरों का दल लोगों की देखभाल के लिए उपस्थित था।

नरेन्द्र ने डाक्टरों के सामने जाकर सूटकेस खोल दिया। सब के सब आश्चर्य विस्फारित नेत्रों से उसे देखने लगे। नरेन्द्र ने कहा—यह सोचने का समय नहीं है। जल्दी से जल्दी इन्जेक्शन उठाइए और मरीजों को लगाइये।

कुछ ही देर में मुहल्ले की मुर्दनी गायब होने लगी। सबका चेहरा आशा और विश्वास से जगमगाने लगा। नरेन्द्र के हाथों में पुलिस ने आकर हथकड़ी लगादी थी। लोगों को इन्जेक्शन लगाये जा रहे थे और वह एक अपराधी के रूप में खड़ा देख रहा था। उसकी आँखों में खुशी के आँसू छलक आये थे।

खाली कागज पर एक इबारत

मास्टर बिहारीलाल ने कभी किसी स्कूल मे नहीं पढ़ाया था और न भविष्य में ऐसा करने का इरादा रखते थे। उन्हें यह भी याद नहीं कि मास्टर का खिताब उन्हें कब, क्यों और किसने दे डाला। बस, एक अर्से से उनके प्रियजन, सगे सम्बन्धी और मित्र उन्हें मास्टर बिहारीलाल कहते थे। पिछले दिनों से उन्हें मास्टर कहलाना कुछ रुचिकर भी लगने लगा था। क्योंकि लोग उनकी प्रायः सभी बातों को ध्यान से सुना करते और नसीहत के तौर पर लिया करते।

मास्टर बिहारीलाल ने अपने व्यवसायिक जीवन की शुरुआत एक सरकारी कार्यालय में क्लर्क बनकर की, जिसे निभाते हुए आज उन्हें कोई दस वर्ष हो रहे थे। पिछले दस वर्षों मे उन्होने तीन शहर और चार महकमे बदले। पिछले तीन वर्षों से वे यातायात के महकमे में थे जहां उनके परोक्ष रूप से अनेक शत्रुओं ने जन्म ले लिया था। मित्र भी थे पर शत्रुओं की गिनती मे नहीं के बराबर। असल मे उनके शत्रु पैदा हो जाने का एक बहुत ही महत्वपूर्ण व्यावहारिक पहलू भी था। वह यह कि जब से वे यातायात के महकमे मे आए थे उन्होंने तीन वर्ष के अर्से मे दो तरक्कियां ले ली थीं और अब वे अपने कार्यालय के अध्यक्ष पद पर काम कर रहे थे। दरअसल उनके कार्यालय के कई साथियों को मास्टर बिहारीलाल ने आश्चर्य मे डाल दिया था। वे सोचते थे कि जिस कार्यालय मे एक साधारण क्लर्क का पद हासिल करने के लिए उन्हें बड़े-बड़े अफसरों की सिफारिश

लानी पड़ी वहाँ मास्टर बिहारीलाल एकदम सीनियर क्लर्क की जगह कैसे कूद पड़े ? साथ ही उनको दफ्तर में ऐसा काम दिया गया जिसमें-ट्रक मोटर और बस मालिकों से ऊपरी आमदनी की भारी सम्भावनाएं थीं। अर्थात किसी गाड़ी का रवाना पास बनाओ और नित्य अच्छे खासे पैसे पा जाओ। बिना कुछ कहे रोज के दस भी मिले तो क्या बुरा है। और अगर काउन्टर पर आने वाले को थोड़ा बहुत इशारा कर दो तो दस के दो नोट तो खरे ही समझो।

इसके अतिरिक्त इसी वर्ष उन्हें कार्यालय का अध्यक्ष भी बना दिया गया था। यह भी देखा गया कि मास्टर बिहारीलाल की साहब के साथ बहुत पटती है। जब वे फाइलें लेकर साहब के कमरे में जाते हैं तो घंटों उन्हीं के साथ बैठे, जाने क्या-क्या डिस्कस किया करते हैं। यह बात कार्यालय में प्रचारित होते देर नहीं लगी कि उनपर साहब की विशेष कृपा है। कार्यालय के शत प्रतिशत लोगों का यह सौ फीसदी विश्वास था कि मास्टर बिहारीलाल के पीछे किसी बड़े और जोरदार मिनिस्टर का हाथ है। उन्हीं की कृपा से उन्हें इस कार्यालय में भेजा गया है और पहले ऐसे पद पर नियुक्त किया गया जिसमें प्रतिदिन दस पन्द्रह की ऊपरी आमदनी थी और शायद इसी वजह से जल्दी ही उन्हें कार्यालय अध्यक्ष के पद पर तरक्की दे दी गई। मास्टर बिहारीलाल इन सब अफवाहों से बेखबर थे और अपना काम लगन से कर रहे थे।

उनके हमउम्र और मित्र अब उन्हें कभी-कभी पूछ लिया करते-मास्टर जी, यार अब तो आपके पाँव इस महकमे में चट्टान की तरह जम गए हैं। अब तो बतादो तुम किस मिनिस्टर की कृपा के पात्र हो ?

मास्टर जी उनके इस प्रश्न का उत्तर एक हल्की सी मुस्कुराहट से देते और उन लोगों की शंका, शंका ही बनी रहती।

मास्टर बिहारीलाल कोई बुरे आदमी नहीं थे। वे सदा ही अपना काम लगन और ईमानदारी से करने में विश्वास रखते थे। वे अपनी उम्र

के पैंतीस सावन गुजार चुके थे । दुनियां और दुनियादारी को उन्होंने आँखें खोलकर देखा–परखा था । व्यवहार के सादे, चेहरे के भोले और इरादों के पक्के, मास्टर बिहारीलाल एक निहायत मेहनती और जहीन किस्म के प्राणी थे । जब से वे यातायात के महकमे मे आये थे निश्चय ही उनके रहन सहन और तौर तरीकों में कुछ अन्तर आया था । अब वे अच्छे और धुले हुए कपड़े पहनकर दफ्तर आते । साईकिल और जूते जो उन्होंने नए खरीदे थे, चमकते थे । दफ्तर के बाहर अपना-नम्बरी चश्मा उतारकर वे धूप का चश्मा भी चढ़ा लिया करते थे । उनके घर में भी कुछ नया सामान आया था, जैसे रेडियो, हाथ की घड़ी, कुछ गहने, सिलाई की मशीन और बच्चों के कुछ कपड़े और पत्नी के लिए साड़ियां । उन्होंने अपना पुराना मकान जो एक अन्धेरी बस्ती में एक गन्दी गली के अन्दर था, छोड़ दिया था और अब एक अच्छी बस्ती मे साफ सुथरी जगह रहते थे । कुछ थोडा बैंक बैलेंस भी बना लिया था ।

यद्यपि वे स्वभाव के बहुत विनोदप्रिय थे । किन्तु आजकल कार्यालय में अपेक्षाकृत अधिक गम्भीर बने रहते । समय पर अपनी टेबल पर मिलते और जरूरत होती तो दफ्तर के समय के बाद भी कार्यालय मे ठहर जाते । क्योंकि उनके साहब देर से दफ्तर आकर दफ्तर का समय खत्म हो जाने के बाद भी बैठे रहते तो उन्हें भी प्राय ऐसा ही करना पड़ता ।

मास्टर बिहारीलाल को अपनी माली हालत में जो परिवर्तन आया था, उसका एहसास जरूर था । किन्तु उसपर आश्चर्य नहीं होता था । क्योंकि पिछले दस वर्षों से वे अपनी और अपने परिवार की स्थिति सुधारने मे बड़ी निष्ठा के साथ जुटे हुए थे । चार वर्ष पहले जब वे इस योग्य हुए तो उनकी बूढ़ी माता का देहान्त हो गया और सारा पैसा उनके क्रिया-कर्म, औसर और देन-लेन में लग गया । यातायात विभाग मे आने के बाद, उनके घर में यद्यपि एक शिशु ने और जन्म लिया था और उनके परिवार

म्पर अब तीन की जगह चार हो गए थे फिर भी उनके व्यय में विशेष
र्तन नहीं आया था।

एक सुहानी शाम, जब वे अपनी छत पर अपने नन्हे को गोद में
: टहल रहे थे तो उनके पड़ोसी मिस्टर आदित्येन्द्र ने अपनी छत से ही
नमस्कार किया और खड़े हो गए। मास्टर बिहारीलाल ने जब उनका
बात करने का देखा तो वे भी उनके करीब जा खड़े हुए।

आदित्येन्द्र बोले-सुना है मास्टरजी, आजकल तो आपके पौ बारह
प्रफसर खुश, व्यापारी खुश, चारों अंगुलियां घी में हैं। अब तो किसी
दावत हो जाय।

मास्टर बिहारीलाल यद्यपि उनके व्यंग्य को समझ गए थे किन्तु फिर
ष्ट रूप से इसे स्वीकारा नहीं तथा गम्भीर होकर बोले-मैं आपका
व नहीं समझा भाई साहब!

अजी क्यों बनते हैं, हमें कुछ बंटाना थोड़े ही है आपसे। हम तो यही
हे हैं कि अकेले इतना माल पचेगा नहीं। किसी दिन दोस्तों और
यों को भी तो दावत खिलाया कीजिये। कहते हुए एक व्यंग्यपूर्ण
आदित्येन्द्र जी के मुख पर खेलने लगी।

मास्टर बिहारीलाल को लगा जैसे उनकी हंसी में व्यंग्य ही नहीं
धूर्तता भी भरी हुई है। फिर भी उन्होंने अपने शान्त स्वभाव के
बात को हंसी में ही टालते हुए कहा-घबराइये नहीं, किसी दिन
हाथ मारने का मौका आने दीजिये, पड़ोसियों को तो क्या, सारे
को दावत खिलाऊंगा।

मिस्टर आदित्येन्द्र उनके इस उत्तर से कदाचित् आश्वस्त हो गए।
मास्टर जी को उनके बात करने का ढंग, उनका व्यंग्य बहुत ही
गा। पहले तो उन्होंने सोचा कि वे भविष्य में उनके साथ किसी
विनीत सम्बन्ध नहीं रखेंगे पर फिर जाने क्या सोचकर अपने इरादे
ल वे सामान्य बने रहे।

यों ही दिन गुजर रहे थे कि एक दिन एक ऐसी घटना घट गई जिसने मास्टर बिहारीलाल के मित्रों, पड़ोसियों और सहकर्मियों को आश्चर्य मे डाल दिया। उनके लिए यह एक अप्रत्याशित घटना थी। भला उन जैसा आदमी ऐसा क्योंकर करेगा। मिल बाँटकर खाना किसे नही रुचता ? और फिर बिहारीलाल की तरक्की और माली हालत सुधारने की बुनियाद भी क्या है। कुल मिलाकर लोगों को सहज ही में इस बात पर विश्वास नहीं हुआ। किन्तु जो सत्य था उसे कोई झुठला नहीं सकता था। वह तो दूध की तरह साफ और स्पष्ट था।

उस शाम मास्टर बिहारीलाल देर तक साहब के कमरे में रहे और उनके बीच गरमागरम बहस भी हो गई, जिसे दफ्तर के लोगों ने कान देकर सुना था, छिपकर देखा था। मास्टर बिहारीलाल साहब की मेज के करीब खड़े सहज भाव से कह रहे थे–साहब, मेरी दस वर्ष की सर्विस बिल्कुल बेदाग और साफ रही है, मैंने कभी कोई गैर कानूनी काम नही किया। कभी घूस नही ली, भला अब यह पाप कैसे कर सकता हूँ ?

साहब ने उत्तर में कहा–मास्टर बिहारीलाल, पाप-पुण्य कुछ नही, यह मेरी इज्जत का सवाल है। मैं बस के मालिक को वादा कर चुका हूँ। थोड़ी सी रिस्क है जिसके लिए मैं आपको अच्छी खासी रकम दिलवा सकता हूँ। और जानते हो, वह मिनिस्टर साहब का आदमी है। अगर हम उसका काम नही करते हैं तो कल ही हम दोनों को नोटिस मिल जायेगा। इससे तो अच्छा है हम कुछ लेकर उसका काम करदें। इससे आगे तो मैं समझता हूँ अब शायद आपको और कुछ कहने की जरूरत नही है।

मास्टर बिहारीलाल ने अपने शब्दों में दृढ़ता भरकर कहा–क्षमा कीजिये साहब, मैं यह गलत काम नहीं कर सकता। मेरे हाथ से ऐसा कोई काम नहीं हो सकता जो कानून और नियम का गला घोंटता हो। और वे कमरे के बाहर चले आए।

कमरे के बाहर जो लोग खड़े उनके और साहब के मध्य चल रही

वार्ता सुन रहे थे अपनी-अपनी जगह खिसक गए और सारे दफ्तर में श्म
सी खामोशी छा गई।

अपनी ईमानदारी और उसूलों पर चलते हुए आज मास्टर बिहा
लाल के लिए परीक्षा की घड़ी आ गई थी और उसकी कसौटी पर अ
आपको खरा सिद्ध करने का भी वे दृढ़ निश्चय कर चुके थे। टेबल
आकर उन्होंने एक कागज उठाया और उसपर एक इबारत लिखी, जि
देख-पढ़कर सभी स्तंभित रह गए। यह इबारत उनके काम छोड़ने
इबारत थी। यह उनका त्याग पत्र था।

अन्न-दान

चौधरी सेवकराम कल ही चारों पवित्र धामों की तीर्थ यात्रा करके लौटे थे। इस यात्रा में उन्होंने बहुत सा धन खर्च किया था। गाँव में वापस आए तो बहुत सी आदतें जैसे हुक्का पीना, बीड़ी पीना, पान खाना, जर्दा लगाना आदि को भी पवित्र स्थानों में स्नान करने से पूर्व छोड़ आए थे। गाँव के सभी लोग, जो उनकी धार्मिक प्रवृत्ति और सेवाभाव से पहले ही प्रभावित थे, यह जानकर और भी प्रभावित हुए कि वे हुक्का, पान आदि को भी त्याग आए हैं।

गाँव के पुराने मन्दिर में उसी रात लोगों ने चौधरी के स्वागत-सम्मान में एक धार्मिक समारोह किया और भजन-कीर्तन का कार्यक्रम रखा। ग्रामसेवक जी ने चौधरी के सेवाभाव तथा धार्मिक कृत्यों पर प्रकाश डाला। उन्होंने कहा—भाइयों, जैसा कि आप जानते ही हैं, चौधरी सेवक-राम जी अपने गाँव के धार्मिक और सेवाभावी आदमी हैं। सच पूछिए तो इन्हीं की कृपा से गाँव में धार्मिक प्रवृत्ति बनी हुई है, वरना आज के कलियुग में अब सब लोग अपने-अपने स्वार्थ-साधन में लगे हुए हैं, भला अपनी परम्परा और धर्म को कौन मान देता है? लेकिन यह खुशी की बात है कि अपने गाँव में अभी ऐसे लोग हैं जिन्होंने धर्म और परम्परा के प्रति प्रेम नहीं छोड़ा है।

गाँव वालों ने इसपर हर्ष प्रकट किया और सेवकराम की धार्मिकता की मन ही मन सराहना की।

ग्राम सेवक जी के बाद एक अन्य सज्जन खड़े हुए और सेवकराम जी का गुणगान इस प्रकार करने लगे—आप हमारे गाँव में सेवा की जीती-जागती तस्वीर हैं। आप देखते ही हैं, जब कभी कोई साधु-महात्मा, कोई पंडित गाँव आता है तो सेवकरामजी ही उसकी सेवा, स्वागत, आवभगत का प्रबन्ध करते हैं। सेवकराम जी इन सेवा कार्यों में जितना समय और धन खर्च करते हैं उतना गाँव में क्या कोई करेगा ? वह जो गोशाला के पास वाले मैदान में सरकार की ओर से जो नया मन्दिर बन रहा है, वह सेवक राम जी की कोशिशों का ही फल है। अगर आप बार-बार शहर जाकर अफसरों का ध्यान नहीं दिलाते तो मन्दिर शायद दो चार वर्ष तक और नही बनता। आप अभी धार्मिक स्थानों की पवित्र यात्रा से लौटे हैं और हुक्का, पान आदि छोड़कर अपने संयम का उदाहरण हम सबके सामने रखा है। मैं ईश्वर से यही कामना करूँगा कि आपकी छत्रछाया गाँव पर हमेशा के लिए बनी रहे।

सभी लोगों ने तालियाँ बजा कर उनके कथन से सहमति प्रकट की। रात को देर गए भजनकीर्तन चलता रहा। आज के विशेष प्रसाद का प्रबन्ध भी जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को दो-दो पेड़े और एक-एक लड्डू दिए जाने की व्यवस्था थी, सेवकराम जी ने ही किया था। कार्यक्रम समाप्त होने पर सभी लोग प्रसन्न मन मन्दिर से घर लौटे।

चौधरी सेवकराम गाँव के इने-गिने सम्पन्न लोगों में से थे। अपने दादा से विरासत में मिली अपार धनराशि के वे अकेले ही मालिक थे। उनकी उम्र कोई पैंतीस और चालीस के बीच थी। घर में केवल दो प्राणी और थे। एक पाँच साल की बालिका और उनकी पत्नी सावित्री। गाँव में लाल पत्थर से बनी एक ही हवेली थी। भण्डार, कोठार और बहुत से कमरों वाली इस हवेली में वे बड़ी शान से रहते थे। इस विशाल हवेली में केवल दो नौकर थे जिन पर हवेली को साफ रखने से लेकर भोजन पकाने तक की पूरी जिम्मेदारी थी। हजारों बीघे जमीन थी, जिसमें सब्जी-बाड़ी

काश्त होती थी। खेत मे भाड़े के लोग काम करते और हर फसल पर अनाप-सनाप आमदनी होती।

सेवकराम गाँव मे अपनी प्रतिष्ठा बनाए रखने के लिए अनेक धार्मिक कार्यों में हाथ बँटाते और धार्मिक लोगो को अपनी हवेली मे प्रश्रय देते। उन पर थोड़ा बहुत पैसा भी खर्च करते। उनकी चेष्टा प्रायः यही रहती के जो कुछ भी इस निमित्त करे उसकी चर्चा गाँव मे जरूर हो जाए। इसीलिए वे गाँव में कुछ अन्य लोगों को भी प्रसन्न रखते थे। उनकी बैठक में प्रायः ऐसे लोगों की भीड रहती जो चाय, हुक्का और भगवान की पूजा का प्रसाद पाते।

सेवकराम की बैठक मे जब कभी समाज में फैली भूख, बेकारी और गरीबी की चर्चा होती तो वे बडे दयनीय भाव से इन सबसे पीडित वर्ग के प्रति अत्यन्त सहानुभूति जताते हुए कहते—सब भगवान की माया है। कही धूप कही छाया है। विधाता ने एक के भाग्य मे सुख और चैन लिखा है, तो दूसरे के भाग्य मे दर-दर की ठोकरें। मनुष्य होने के नाते हमें चाहिए कि हम दीन-दुखियो के प्रति अपने कर्त्तव्य को समझें और उनके *प्रति दया और सहानुभूति का व्यवहार करें।*

अपने इन्ही विचारों के कारण चौधरी ने गाँव में पर्याप्त ख्याति अर्जित की थी। गाँव के लोग चौधरी के अन्दर झाँक कर देखने की चेष्टा कम करते थे और उनके भाषण तथा बाहरी दिखावे से अधिक प्रभावित होते थे।

एक बार गाँव में पूरे वर्ष भर वर्षा नहीं हुई। खेतिहरों की खेती सूख गई। पशु पालकों के पशु पानी के बिना प्यासे मर गए। आस-पास जो एक दो तालाब थे उनमे अब कीचड भी नहीं बचा। गाँव के लोगों की आर्थिक स्थिति वैसे भी अच्छी नही थी। घर मे जो कुछ बचा के रखा था प्रायः सभी उसे खा पी चुके थे। एक तो पानी का अभाव दूसरी पानी को

कमी। वर्षा का मौसम दूसरी बार भी टल गया। जमीन फटकर बिखरे लगी। आस-पास के अनेक गाँवों में सूखा पड़ गया। गाँव के लोगों की हालत अभावमयी हो गई। न खाने को अन्न बचा न पीने को पानी। कुछ लोग वहाँ से अपने मवेशियों को लेकर दूसरे इलाकों में जाने लगे। किन्तु अकाल की छाया केवल उसी गाँव में नहीं थी, दूसरे गाँव भी दूर तक उसके अन्धेरे में छिप रहे थे। धरती सूख रही थी। लोगों का स्वास्थ्य दिन ब दिन गिरने लगा और अन्न तथा जल की कमी के कारण कई बच्चों, बुड्ढों और जवान लोगों ने दम तोड़ दिया।

सेवकराम की हवेली में पानी की एक पातालफोड़ बावड़ी थी जिसमें काफी पानी जमा रहता था। इन दिनों वह भी प्रायः खाली हो रही थी। पर उसमें थोड़ा बहुत पानी अवश्य शेष था। किंतु सेवकराम का ख्याल था कि अगर वर्षा का यही हाल रहा तो उसकी बावड़ी का पानी भी एक दिन सूख जायेगा और गाँव के अन्य परिवारों की भांति वह, पत्नी और बच्ची भी प्यासे मर जायेंगे। अतः उसने गाँव में सार्वजनिक रूप से यह घोषणा करदी कि अब उसकी बावड़ी का पानी भी सूख गया है, और बावड़ी के दरवाजे पर एक बड़ा सा ताला लगा दिया।

सेवकराम के पास अनाज की भी हजारों बोरियां थीं। किंतु इन दिनों अब आदमी पेड़ पौधे और बेलें खाकर अपनी जिन्दगी की गाड़ी को [illegible] रहे थे उन बोरियों का भण्डारों में खास तौर से रखना खतरे से खाली नहीं था। अतः उन्होंने अपने दोनों आज्ञाकारी नौकरों को लगाकर [illegible] अनाज की इन बोरियों को अन्धेरे में रखवाकर और अधिक सुर[illegible] कर दिया। दिखाने के लिए दो बोरियों का अनाज सार्वजनिक रूप [illegible] अपने हाथों से बांट दिया और कहा—भाइयों, भगवान हमारी [illegible] ले रहा है। हमें उसकी कृपा पर भरोसा रखना चाहिए। संकट के [illegible] में अब मौत हमारे सर पर मंडरा रही है, मैं अपने कर्तव्य को [illegible] है, मैंने घर में बची अनाज की दो अन्तिम बोरियों को आप लोगों

में बाँट दिया है। अब मेरा भी वही भविष्य है जो आप लोगों का। मैं आज ही शहर जाकर सरकार से आप लोगों की मदद करने की माँग करूँगा। ईश्वर ने चाहा तो मृत्यु और जीवन के संघर्ष में जीवन विजयी होगा।

दूसरे ही दिन सेवकराम शहर चले गए। शहर में उन्होंने अपने सभी परिचितों से गाँव की अकाल की स्थिति का जिक्र किया। वह सरकारी कार्यालयों में भी गये किंतु उनसे सहानुभूति और आश्वासन के सिवाय एकाएक कोई मदद नहीं मिल सकी। वह निराश लौट आये। सेवकराम का विश्वास था कि सरकारी प्रयत्न यदि शुरू भी हो गये तब भी अकाल की यही स्थिति गाँवों में कुछ वर्षों तक और बनी रहेगी। लोगों का आर्थिक स्तर इतना गिर चुका है, कि वे पैसा देकर अनाज खरीदने की स्थिति में नहीं हैं। ऐसे समय में उसे अपने पानी और अन्न के भण्डार को अधिक सुरक्षित रखने की बात सूझी।

सेवकराम के घर लोगों की बैठकें अब बन्द हो गईं थी। स्वयं यदा-कदा किसी किसान की झोपड़ी में हो आते। हर घर में बीमार और कंकालों की संख्या बढ़ रही थी। किसी में वहाँ से चलकर भाग जाने की हिम्मत और ताकत शेष नहीं थी। लोग बेलें और पत्ते चबा-चबाकर अपनी-प्यास मिटाते और मौत को कुछ समय के लिए और दूर कर देते थे। सेवकराम की हार्दिक इच्छा थी कि बारिश हो जाये। फसल लहलहाने लगे और अकाल तथा संकट के इन बुरे दिनों से लोगों को मुक्ति मिले किन्तु वह स्वयं के भंडार और बावड़ी से अन्न एवं पानी देकर, स्वयं अपने परिवार का भविष्य अंधकार में नहीं डालना चाहते थे।

एक रात वो वे दीपक लेकर अपने अंधेरे कमरों में गये जहाँ अनाज की अनगिनत बोरियाँ रखी थी। एक क्षण उन्हें विचार आया यदि इन बोरियों का अनाज थोड़ी-थोड़ी मात्रा में भी गाँव के लोगों को दिया

जाये तो वे कम से कम छ माह तक स्वयं को मृत्यु की गोद में जाने से बचा सकते हैं, और छ माह बाद तक सरकार भी कुछ न कुछ हल निकाल लेगी। किन्तु यह विचार सेवकराम की आत्मा में छिपे इन्सान का एक क्षणिक विचार था। आया और चला गया। उसने भावी सुरक्षा पर मन ही मन गर्व और प्रसन्नता का अनुभव किया। भंडारों को देखने के बाद वह बावड़ी की ओर आया तो उसने देखा—बावड़ी में पानी पहले से भी नीचा हो गया है। किन्तु निश्चय ही शीघ्र उसके सूखने की संभावनाएं अभी नहीं हैं। उसने जल्दी से बावड़ी का ताला बन्द किया और आकर सो गया।

गाँव के लोगों की स्थिति प्रतिदिन बदतर होती जा रही थी। गाँव में जिस किसी के पास जो कुछ भी बचा था उसे अनिवार्य रूप से बाँटकर खाना होता, अन्यथा लोग एक दूसरे के खून के प्यासे हो जाते।

अकाल के इन दिनों एक दिन अचानक आकाश में बादल घिर आए। बिजली कड़कने लगी और मूसलाधार पानी गिरने लगा। लोगों को लगा—सचमुच भगवान ने उनकी मौन पुकार सुनली और उनके अच्छे दिन आ गए। सेवकराम ने भी वर्षा को शुभ माना किन्तु वे मौसम की इस वर्षा से लोगों का जीवन सुखी होने की बजाय और अधिक दुख से भर गया।

हुआ यह कि वर्षा की बून्दों के साथ एक संक्रामक हवा चली और गांव में एक ऐसी बीमारी फैली कि हर दिन दो आदमी मरने लगे। एक तो भूख और दूसरे बीमारी।

उस रात सेवकराम के पड़ोस में एक आदमी मर गया। सुबह हुई तो उसने देखा कि उसका एक आज्ञाकारी नौकर अपने जीवन की अंतिम घड़ियाँ गिन रहा है। रात को उसे थोड़ा बुखार हुआ। हाथ पाँवों में दर्द बढ़ा और छाती फटने लगी। दोपहर तक वह मर गया।

उसके तीन दिन बाद स्वयं सेवकराम का बदन तपने लगा और

शरीर टूटने का सा हो रहा। वह घबरा गया। एकबारगी ही उसकी आँखों के सामने जैसे प्रेत मंडराने लगे। यद्यपि वह अधिक बीमार नहीं हुआ था फिर भी उसका मन अनेक भयावह आशंकाओं से भरने लगा। वह सोचने लगा निश्चय ही इस बीमारी से वह नहीं बच सकेगा और उसे भी असमय ही मौत को गले लगाना पड़ेगा। वह काँप उठा।

अनेक साधु-महात्माओं और सत्संग संस्थाओं में उसने दान-पुण्य करने से लाभ होने की बात सुनी थी। कई कहानियाँ पढ़ी थी और कई बार दान पुण्य का स्पष्ट प्रभाव भी देखा था। रात को जब उसकी हालत और गम्भीर हो गई तो उसने विचार किया कि उसे पुण्य करना चाहिये। भूखे लोगों को अन्न दान देकर वह शायद मौत के मुंह से बच सकता है। शास्त्रों में भी यही लिखा है। भूखे को भोजन, प्यासे को पानी देकर आदमी अनेक पुण्यों का भागी बनता है। वह मृत्यु तक को जीत सकता है।

उसने अपनी पत्नी को करीब बुलाकर कहा—देखो, मुझे डर लग रहा है। कहीं मैं भी दूसरों की तरह।"

उसकी पत्नी सिसकने लगी।

ऐसा करो, मेरे बिस्तर के नीचे अनाज के भंडारों और पानी की बावड़ी की चाबी है। तुम इसी समय लोगों को अनाज और पानी देने का पुण्य काम शुरू कर दो। शायद ईश्वर मेरी पुकार सुन ले—उसने आगे कुछ नहीं कहा और अपनी पत्नी की ओर देखने लगा।

उसकी पत्नी ने ऐसा ही किया। तुरन्त भंडार से लोगों को अनाज देने की व्यवस्था करवाई गई और बावड़ी से पानी देना शुरू कर दिया। किन्तु ऐसा करने के उपरान्त भी सेवकराम की हालत नहीं सुधर सकी अपितु प्रतिक्षण गिरती ही गई।

अभी कल ही की बात थी-सेवकराम का दिया हुआ एक-एक मुट्ठी

अनाज कई लोगों की जान बचा लेता। किन्तु आज कोठार भरे अनाज की हजारों बोरियाँ भी सिर्फ एक आदमी की जान नहीं बचा सकी। स्वयं सेवकराम को मौत के मुंह में नहीं निकाल सकीं। तीर्थ करने वाला पुण्यात्मा और मन्दिर बनवाने वाला धर्मात्मा आज अपने जीवन की अंतिम साँसें गिन रहा था, और उसका भगवान उससे रूठकर न जाने कहाँ जा छिपा था।

❖

कई आसमान उसके गिर्द सिमट आये हैं। वह उसके बालों को सहलाती हुई कहती–देखो प्रदीप, हर किसी पर अपना प्यार मत लुटाया करो।

प्रदीप कहा करता–रेख., प्यार और स्नेह ऐसी चीजें नहीं हैं जो किसी खास आदमी के लिए हों। आदमी के मन में ये भाव सहज ही पैदा होते है जो भेद करके रखने के लिए नहीं बल्कि बांटने के लिए हैं।

तो तुम किन-किन को बांटा करते हो?—रेखा ने एक दिन कहा था और महसूस किया था कि प्रदीप के हाथों की पकड़ ढीली पड़ती जा रही है। उसने प्रदीप के गले में अपने दोनों हाथों को डालकर हल्के से दबाया था। लगा जैसे प्रदीप चेतन नहीं जड़ है। उसे अपने शरीर में भी अजीब अवचेतनता समाती हुई लगी।

रेखा उससे अक्सर कहा करती–तुम सबसे एक ही तरह से मत मिला करो। सच कहती हूं प्रदीप, जब तुम्हें सबके साथ यूं उन्मुक्तभाव से मिलते हुए देखती हूँ तो ईर्ष्या होने लगती है। सोचती हूं कहीं मुझमें कोई कमी तो नहीं है।····

प्रदीप ने उसे कितनी ही बार आश्वस्त किया था कि अपनी पत्नी के रूप में वह उसे बहुत चाहता है। कहीं भी अपने दायित्व से नहीं भागता। उसकी देखभाल और उसकी सुख-सुविधा का ध्यान पूरी तरह से रखता है। स्वयं उसने ऐसा महसूस भी किया था किन्तु विवाह के थोड़े ही समय के बाद जाने कैसे-कैसे प्रश्नबिन्दु रेखा के मस्तिष्क में बनने प्रारम्भ हो गये थे।

रेखा अक्सर कल्पना किया करती। प्रदीप सबको प्यार करता है। सब पर स्नेह लुटाता है। फिर उसके सम्पर्क में ढेर सारे लोग। युवक-युवतियां।···वह तटस्थभाव संजो नहीं पाती और सोचने लगती वीना, कुसुम, आरती····प्रदीप का व्यवहार कभी भी इनमें से किसी को भी प्रभावित कर सकता है। इन सबके साथ भी उसका व्यवहार उसके बहुत समान है। कुसुम तो उसकी सहेली भी है। पर···पर क्या भरोसा····वह

सभी बातें उसे बताती है। लेकिन जब भी प्रदीप की बात आती है कुछ नहीं कहती। कुछ नहीं बोलती।

वीना का प्रदीप से यूं सुनकर मिलना उसे कदापि पसन्द नहीं। जब जी चाहा किसी न किसी बहाने घर पहुँच जाना। माना उसे पेन्टिंग का शौक है और प्रदीप कालेज में उसे पेन्टिंग का विषय पढ़ाता है। लेकिन इससे क्या? घर में आने-जाने की कुछ सीमाएं होती हैं। रेखा को, वीना ये सभी सीमाएं पार करती हुई लगती। रेखा का मन निरन्तर शंकाओं की परिधियों में बन्द होता चला गया।

आप कुछ खाना पसंद करेंगी?—बैंक की कैंटीन में दोनों एक ओर पड़ी खाली टेबल पर बैठ गये थे। प्रदीप रेखा के उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही कूपन खरीदने चला गया। वापसी पर बहुत सी मिठाई, नमकीन और चाय के दो कप ले आया। टेबल की ओर उसे आते देखा था तब रेखा की इच्छा हुई थी कि वह उठकर उसके हाथों से थोड़ा भार हल्का कर दे। पर जाने क्या सोचकर वह उठी नहीं।

इतना कुछ ले आये आप—रेखा ने सकुचाते हुए कहा।

दो बजे रहे हैं। भूख लग आई होगी आपको।

जी नहीं, मैं खाना खाकर चली थी।

खैर लीजिये—प्रदीप ने चाय का कप रेखा को थमाते हुए कहा। ऐसा करते समय उसका हाथ रेखा के हाथ से छू गया। दोनों को हल्का सा कम्पन महसूस हुआ। रेखा को अजीब सा लगा। इन्हीं हाथों के स्पर्श को उसने आज से पहले भी कितनी ही बार अपनी बाहों, बालों, जंघाओं और वक्षों पर महसूस किया है। तब जो कम्पन उसके शरीर में जागता था वह आज के कम्पन से कितना भिन्न था⋯कितना अलग।

मेरा वकील कह रहा था। सारी कार्यवाही हो चुकी है। मजिस्ट्रेट साहब आज ही दौरे से लौटे हैं। अभी साढ़े तीन बजे के करीब कोर्ट में आ जायेंगे। आज हमारा तलाक मंजूर हो जायेगा—प्रदीप ने रेखा की ओर देखते हुए कहा।

हथेली मे लेकर मसल दी। तिली जलाई और उसे जमीन मे डालकर जूतो से रौंद दिया।

दोनों उठ खड़े हुए। कोर्ट का चपरासी दोनो के नाम लेकर आवाज दे रहा था। दोनों कोर्ट के अहाते की ओर बढ़ने लगे।

तलाक के लिये नोटिस दिलवाने से पहले तुम मुझे अपनी स्थिति स्पष्ट करने का मौका तो दे ही सकती थीं–प्रदीप ने चलते हुए कहा।

सुनकर रेखा की आँखों मे आंसू छलक आये। उसकी इच्छा हुई कि वह प्रदीप को डांटकर कहे—तो तुमने भी मेरी बात को समझने की कोशिश कब की? इतनी सी बात को अपना प्रेस्टीज पाइन्ट बनाकर बैठ गये? मैं नही आई तो तुम खुद आकर सारी बात साफ कर सकते थे। *आखिर मैं तुम्हारी पत्नी हूँ। कोई....। उसे लगा जैसे वह रोये बिना नहीं* रह सकेगी। वह एक क्षण रुकी। उसने देखा प्रदीप कोर्ट मे जाने की बजाय पार्क की ओर जा रहा है। वह उसे काफी दूर तक जाते हुए देखती रही। फिर जाने क्या सोचकर वह भी उसी ओर बढ़ गई।

कोर्ट का चपरासी अभी भी उन दोनों का नाम लेकर आवाज लगा रहा था।

प्रकाश की एक किरण

सुबह अखबार पढ़ रहा था। एक पृष्ठ पढ़ चुका और दूसरा पृष्ठ खोलते समय जैसे ही पड़ोस के मकान की ओर दृष्टि गई तो देखा—मिश्राजी का दस वर्षीय बालक मेरी ही ओर देख रहा है। लगा जैसे वह मुझसे कुछ पूछना चाहता है। मुझे अपनी ओर देखते पाया तो वह मेरे करीब आया। मैंने पूछ लिया—कहो मुन्ने क्या बात है ?

अंकल जी, गणित का एक सवाल समझ मे नहीं आ रहा है। आप बता देंगे क्या ?—मुन्ने ने कहा

हाँ, हाँ। बताओ कौनसा सवाल है ? — मैंने उसे सवाल समझाने को तो कह दिया। पर खुद मन ही मन घबरा सा गया। गणित के सवालों में, मैं कक्षा में सदा पीछे रहा करता था। बड़ी मेहनत और लगन के बाद भी जब कोई सवाल हल नहीं कर पाता तो मन ही मन गणित विषय से चिढ़ता और भगवान से उस पर्चे मे पास कर देने के लिए प्रार्थना किया करता। जैसे-तैसे मैट्रिक से गाड़ी पार हो गई और मेरा पीछा उस विषय से छूट गया। मिश्राजी का मुन्ना छठे दर्जे का विद्यार्थी था, अतः इस आ... से कि शायद मैं सवाल हल कर सकूँगा, उसे कापी पुस्तक ले आने के लिए कह दिया।

कुछ ही देर में मुन्ना एक भारी सी कापी लेकर मेरे पास आ गया। ...ाल उसी मे लिखा हुआ था। कापी शुरू से आखिर तक साफ़ थी। ...ता था जैसे आज ही बनाई गई है।

यह तुम्हारी 'रफ कापी' है क्या—मैंने कापी के सुन्दर चमकदार और सफेद कागज देखकर पूछ लिया।

जी हाँ, 'रफ कापी'—मुन्ने का उत्तर था।

इतने अच्छे कागजों की कापी रफ काम मे क्यों लेते हो?—मैंने पूछा।

इन कागजो के कोई पैसे थोड़े ही लगते हैं अंकल। पिताजी हर महीने अपने ऑफिस से मुफ्त मे ले आते है। अंकल कापी पेंसिल, निब, होल्डर आदि तो मैं कभी बाजार से नही खरीदता। मेरे पिताजी हर महीने ढेर सारी स्टेशनरी वैसे ही दफ्तर से ले आते हैं। उन्हे दफ्तर की ओर से मिलती है न—मुन्ने ने काफी खुश होकर कहा।

मुझे एकाएक कुछ पुरानी घटनाएँ याद हो आई। तब शायद पाँचवी कक्षा में पढ़ रहा था मैं। मैंने एक शाम अपने बाबूजी से कहा था—बाबूजी आज मुझे मास्टरजी ने नई कापियाँ बनाने को कहा है। अब से मुझे स्कूल का काम अलग कापी मे, तथा घर का काम अलग कापी मे करना पड़ेगा? मुझे याद है। दूसरे दिन बाबूजी ने मुझे ढेर सारे कागज ला दिये थे। मेरी कापियों की जरूरत पूरी हो गई थी। फिर मैं जब भी कापी, पेंसिल या कागज माँगता, बाबूजी मुझे फौरन ला देते। लेकिन जब मैं कोई नई किताब लाने के लिए कहता तो उनकी मुद्रा गम्भीर हो जाती थी। चिन्ता की रेखाएँ उनके मस्तिष्क मे उभरने लगती। लगता जैसे वे उस काम के लिए मजबूर हैं। फिर मैंने एक दिन पूछ ही लिया था—बाबूजी, जब मैं आपको कापी या पेंसिल लाने को कहता हूँ तो आप मुझे फौरन ढेर सारे कागज और बहुत सी पेंसिलें ला देते हैं, और जब पुस्तक के लिए कहता हूँ तो यह भी नहीं बताते कि कब लायेंगे?

मेरा प्रश्न सुनकर जैसे वे कुछ कहने को हुए थे। पर जाने क्यों, कुछ कह नहीं पाये। केवल हँसकर टाल गये। मुझे यह जानने मे देर नहीं लगी थी कि स्टेशनरी का यह सामान बाबूजी ऑफिस से चुराकर लाते हैं।

मुझे यह सब कुछ जानकर बहुत दुःख हुआ था। मन के एक कोने

में जरा देर पहुँचो। आखिर हम इतने मजबूर क्यों हैं ? क्यों बाबूजी को स्टेशनरी दफ्तर से चुराकर लानी पड़ती है ? पर तब यह बात मैं बाबूजी से नहीं कह पाया। इतना अवश्य किया कि उस दिन के बाद मैंने कागजों को बड़ी सावधानी से काम में लेना शुरू कर दिया। फिर बाबूजी से स्टेशनरी की मांग नहीं की। जरूरत पड़ती तो मैं खुद दो–चार आने खर्च करके बाजार से ले आता।

आज मिश्राजी के मुन्ने की कापी को देखकर रह रहकर उन दिनों की स्मृति ताजा हो जाती है। मैं स्मृतियों की गिरफ्त से निकलकर अपना ध्यान सवाल को हल करने में केन्द्रित करना चाहता हूँ। लेकिन हर बार कोई न कोई गलती रह जाती है। जैसे-तैसे सवाल का हल निकल आया और मुन्ना अपने घर लौट गया। पर मेरे विचार मुझे निरन्तर विगत में ढकेलते रहे। बाबूजी दफ्तर से जो स्टेशनरी चुराकर घर लाते थे उसका आना केवल मेरे न मांगने से बन्द नहीं हुआ था। जैसे-जैसे मैं छोटी कक्षाएं पार करता रहा, वैसे-वैसे मेरा छोटा भाई राकेश उन कक्षाओं से गुजर रहा था। वह मुझ से चार क्लास नीचे था अर्थात् जब मैं मेट्रिक पास करके एक दफ्तर मे काम करने लगा था। तो राकेश सातवीं कक्षा में पढ़ रहा था। राकेश का रुख दफ्तर की स्टेशनरी के अधिकाधिक प्रयोग और दुरुपयोग की ओर था। उन कागजों से वह स्कूल की कापियाँ भी बनाता था और खिलौने भी। अक्सर घर के कोनों में कागज बिखरे मिलते। मुझे यह सब कुछ नहीं रुचता। एक दिन ढेर सारे कागज, पेंसिलें, निबें दफ्तर से लाया देख मैंने हिम्मत करके टोक दिया—बाबूजी, यह अच्छी बात नहीं है। आप दफ्तर से स्टेशनरी मत लाया कीजिए।

लेकिन इसमें क्या बात है बेटा, जिस तरह दफ्तर का हम पर अधिकार है उसी तरह दफ्तर की चीजों पर हमारा हक है। और फिर कागज तो मुझे महीने भर का काम करने के लिए दफ्तर की तरफ से मिलते हैं—बाबू जी ने मुझे संतुष्ट करने के लिहाज से कहा।

लेकिन बाबू जी, ये कागज आपको दफ्तर का काम करने के लिए मिलते हैं। घर लाने के लिए नहीं। रही बात आपके अधिकार की सो आपको दफ्तर की ओर से माहवारी वेतन मिलता है—मैंने यह बात कह तो दी पर यह कोई नई बात नहीं थी। बाबूजी खुद इस बात को बेहतर जानते थे। लेकिन जानते हुए भी ऐसा क्यों करते थे, यह मेरी समझ में नहीं आता था।

तुम नहीं समझते बेटा। सब यूँ ही चलता है। दफ्तर से हमें जो कुछ मिलता है, वह क्या परिवार का काम चलाने के लिए पूरा पड़ता है ? फिर भला सरलता से मिलने वाला फायदा क्यों नहीं उठाया जावे ? —बाबू जी ने कहा।

बाबू जी, अपने परिवार का काम चलता है या नहीं यह हमारे सोचने की बात है। दफ्तर से तो जितना मिल सकता है, वही मिलता है। राकेश भी थोड़े दिनों में बड़ा हो जायगा। आप यह क्यों भूलते हैं कि इन बातों का उस पर विपरीत प्रभाव पड़ सकता है।

बाबू जी उस दिन भी मेरी बात को टाल गये। लेकिन हुआ वही जो होना था। राकेश पर बाबू जी के इन कामों का अच्छा प्रभाव नहीं पड़ा। इधर-उधर कहीं जो चीज हाथ में लग जाती वह उठा लाता। एक दो बार पड़ोस से भी वह कुछ चीजें चुरा लाया। मैंने उसे ऐसा करने की मनाही की। लेकिन बाबू जी की डांट के अभाव में उस पर कोई विशेष असर नहीं हो पाया।

एक शाम घर में अप्रत्याशित घटना घट गई। राकेश स्कूल से लौटा ही था कि जल्दी से भोजन के लिए माताजी से आग्रह करने लगा। उस दिन वह हमेशा से अधिक जल्दी और परेशानी में था। भोजन किया और जल्दी से घर से बाहर चला गया। उसे गये हुए कोई दस मिनट हुए होंगे कि पुलिस थाने के दो जमादार हमारे घर आ पहुँचे। वे राकेश का अता-पता

पूछ रहे थे। मालूम हुआ कि राकेश के स्कूल के पास एक बनिये की दुकान में कोई चोरी हो गई है। इसी चोरी में राकेश का भी हाथ बताया गया। उसे पुलिस थाने बुलाया गया था। बाबू जी ने सुना तो बेहद परेशान हो गये। समझा बुझाकर पुलिस के सिपाहियों को मैंने थाने लौटा दिया और स्वयं राकेश को वहाँ ले जाने का आश्वासन दिया।

राकेश काफी देर तक नहीं लौटा। बाबू जी गुस्से में तमतमाते रहे। आँगन में बेंत लेकर इधर उधर टहलते हुए बड़बड़ाते रहे—नालायक कहीं का। जाने किन-किन गुण्डों के साथ मिलकर आवारागर्दी करता रहता है। दुष्ट। पुलिस तो उसे बाद में मजा चखाएगी। पहले मैं उसे चोरी करने का इनाम दूँगा।

मुझे रह-रह कर बाबूजी के स्टेशनरी चुराने की बात याद आती रही। दरवाजे पर खड़ा मैं राकेश की प्रतीक्षा करता रहा। उसे घर आया देख, बाहर से ही अपने साथ पुलिस थाने ले गया। थाने में वे दो लड़के पहले से ही मौजूद थे जिनपर भी ऐसा ही सन्देह था। बताया गया कि बनिये का बहुतसा सामान चुराकर ये तीनों किसी गुप्त स्थान में रख आये थे। सामान मिल गया था। पता चला कि अगर पुलिस ने राकेश को दोषी नहीं पाया तो सुबह तक छोड़ दिया जायेगा। मेरे साथ राकेश को घर नहीं आने दिया गया। सुबह तक पूछताछ के लिए हिरासत में ही रखा गया। मैंने रात को बाबूजी से आकर सब बात कह दी। उन्हें यह भी कह दिया कि चोरी में राकेश का भी हाथ है यह साबित हो गया तो उसे जेल भी हो सकती है।

बाबूजी जैसे किसी अज्ञात भय की आशंका से काँप उठे। उनकी आँखों में क्रोध और पश्चाताप का भाव तिर आया। मैंने उन्हें विश्वास दिलाया कि हम कोशिश करके राकेश को इस मामले से निकाल लेंगे। पर बाबूजी का दिल जैसे बैठता जाता था। शाम तक वे क्रोध से तमतमा रहे थे, तो अब उनका शरीर ग्लानि के कारण ढीला पड़ रहा था।

उस रात बाबूजी देर तक नहीं सोये। आधी रात को भी अपने कमरे में जाने क्या-क्या खोजते और फिर कुर्सी पर आकर बैठ जाते और विचारमग्न हो जाते। खुद मुझे भी नींद नहीं आ रही थी। माताजी अलग परेशान थीं। मैं किसी न किसी बहाने उठकर बाबूजी को देखता रहा। उस रात बाबूजी ने पहले तो अपने दफ़्तर से चुराकर लाई हुई सब चीजों को कमरे में इकट्ठा किया और फिर उसमें आग लगा दी। सभी चीजें जल गईं। कमरा धुएँ से भर गया। इस धुएँ के बीच बाबूजी ने प्रकाश की एक जगमगाती किरण देख ली। पश्चाताप और संकल्प के प्रकाश की यह किरण बाबूजी के अन्तर को बाद में भी निरंतर प्रकाशित करती रही थी। ❖

थाथा सतह : मजबूत नींव

प्रदीप अभी डार्करूम में घुसा ही था कि बाहर से किसी ने दरवाजा खटखटाना आरम्भ कर दिया। उसे बड़ी झुंझलाहट हुई। कुछ क्षणों तक वह दस्तक को टालता रहा फिर खीझकर दरवाजा खोलते हुए बोला—कौन–कौन है ? क्यों परेशान करते हो ? अंधेरे से एकाएक प्रकाश की किरणों में खुलने वाली उसकी आँखें सामने खड़े व्यक्ति की आकृति को ठीक तरह से नहीं पहचान सकीं।

मैं हूँ। क्या कर रहे हो ?—सामने खड़े युवक ने प्रदीप से पूछा।

अरे सत्य तुम ? यहाँ कैसे ? तुम तो कह रहे थे—आज मैं बहुत बिजी हूँ। फिर कैसे टपक पड़े ? खैरियत तो है ?

हाँ यार, बिजी था। लेकिन अब नहीं हूँ —कहते हुए जैसे उसका गला सूखने लगा। प्रदीप की आँखों से 'डार्करूम' के अंधेरे का प्रभाव कम हो गया था और अब वह सत्य के चेहरे पर उभर रहे भावों को भी स्पष्ट रूप से पढ़ सकता था। उसने आज पहली बार उसके चेहरे पर निराशा की विचित्र रेखाओं को बनते हुए देखा।

सुबह सत्य जब घर से चला था तो उसकी आँखों में चमक थी। व्यवस्थित ढंग से काढ़े हुए बालों से चमेली के तेल की महक उड़ रही थी। उसका अंग–प्रत्यंग जैसे किसी चंचल हवा का स्पर्श पाकर खिल रहा था। अब उसकी आँखों की चमक जैसे दूर किसी गहन अंधकार में विलीन हो गई थी और सारा शरीर किसी भारी थकान के बाद की सी स्थिति में था। उसके होंठ लगभग सूख चुके थे।

लेकिन हुआ क्या ?—प्रदीप ने सहज औत्सुक्य प्रकट किया ।

फिर कभी फुर्सत से बातें करेंगे । फिलहाल तुम क्या कर रहे हो ? सत्य ने कृत्रिम मुस्कुराहट अपने चेहरे पर लाते हुए कहा ।

प्रदीप को उसकी कृत्रिम मुस्कुराहट पहचानने में देर नहीं लगी । 'डार्करूम' का दरवाजा बन्द किया और सत्य ने कहा—आओ, रेस्तराँ में चलें । वहीं बातें करेंगे । तुम्हें भूख भी लग रही होगी । कुछ खा पी लेना ।

नहीं यार, मैं यह कहने आया था कि ··· ··· ··

यही कि अब मैं तुम्हें और तकलीफ देना नहीं चाहता—सत्य का कंधा पकड़कर उसे अपने करीब खींचते हुए प्रदीप ने कहा—अबे क्यों फार्मल हो रहा है ? साफ क्यूँ नहीं कहता कि भूख लगी है और आज उस महारानी ने तुझे चाय के लिए भी नहीं पूछा ।

उसका नाम मत लो, प्रदीप । मैं उसे भूल जाना चाहता हूँ—सत्य बोला ।

किसे ?—मीना को, जिसके लिए तुम दुनिया से भी झगड़ने को तैयार थे ?–फिर कुछ ठहर कर प्रदीप ने कहा—लेकिन तुम्हें तो कभी उससे कोई शिकायत नहीं रही, फिर एकाएक क्या हुआ ?—प्रदीप बोला ।

यही मैं सोचता हूँ । जीवन में आज पहली बार मुझे ऐसा लग रहा है, जैसे मेरे अन्तर में कहीं कोई सच्चाई है । प्रकाश की कोई ऐसी किरण बिखर रही है जिसे शायद अँधेरे की कोई चादर अपने में नहीं समेट सकती—सत्य ने उत्तर में कहा ।

अरे यार, आज यह तुझ में कौनसा दार्शनिक जाग रहा है ? कहीं तुझे आत्मज्ञान तो नहीं हो गया ?—प्रदीप ने व्यंग्यपूर्ण ढंग से कहा ।

रेस्तराँ तक पहुँच जाने पर प्रदीप ने फिर कहा—पहले पेट की आग बुझालो, बुद्ध महाराज ! फिर दार्शनिकता बिखेरना । प्रदीप ने सत्य का मूड ठीक करने को निहायत मजाकिया ढंग से यह चुटकी ली ।

सत्य का एक-एक शब्द आज प्रदीप को सर्वथा अस्वाभावि
अजीब लग रहा था। उसने सत्य को कभी इस तरह से गम्भीरतापूर्वक
करते नहीं पाया था। मुस्कुराहट सदैव उसके चेहरे पर खेलती थी।
उसे एक अर्से से जानता है। मुलाकात सत्य से यहीं एक अखबार के द
में हुई थी, जब वह अपने बहुत से नए कार्टून लेकर एडीटर के पास आ
था। प्रदीप अखबार का फोटोग्राफर है और उस समय वह एडीटर से को
बातचीत कर रहा था। उसे सत्य के व्यवहार, उसकी शालीनता और हंस
मुख व्यक्तित्व ने बहुत प्रभावित किया। बाहर आकर दोनों ने एक साथ
चाय पी और फिर उनकी कई मुलाकातें हुईं। धीरे-धीरे वे इतने निकट
आ गए कि सारा दिन एक साथ गुजार देते।

कुछ दिनों में दोनों युवकों के मध्य मित्रता के गहरे सम्बन्ध बन गए।
अब वे दोनों एक मध्य वर्ग के लोगों की बस्ती में साधारण सा फ्लैट कि
पर लेकर एक साथ रह रहे थे। दोनों अविवाहित और महत्वाकांक्षी यु
थे। अपने-अपने धन्धे में पर्याप्त योग्यता से काम करने वाले। प्रदीप ए
अच्छा फोटोग्राफर था तो सत्य एक मेहनती कार्टूनिस्ट। नित्य नए विषयों
पर कार्टून बनाकर वह देश के विभिन्न अखबारों और पत्रिकाओं में भेजा
करता। जिस अखबार में प्रदीप काम करता था उसमें सत्य के कार्टून
नियमित रूप से छपा करते थे। अखबारों से पारिश्रमिक के रूप में जो
राशि मिलती उसी से उसे अपना काम चलाना होता था। पिछले कई दिन
से अब उसके कार्टून अखबार कहीं स्थान नहीं पा रहे थे तो अब किसी अच्छे
[illegible] अखबार में नौकरी कर लेने की बात सोच रहा था। इसी बीच वह
[illegible]नी जरूरतें प्रदीप के सहारे से पूरी करता।

इसी बारे में जब से [illegible] की भेंट [illegible] से हुई और उनके बात
[illegible] एक एक पल रोमांटिक हो उठा। अंग-अंग में जैसे कोई नशीला रस
[illegible] हो। रोम-रोम में कोई रस घुल गया हो। वर्ना उसका जीवन नीरस

ड़ा विचित्र था। उसकी मान्यताएं आम लोगों से बिल्कुल भिन्न थीं। भी चीजों और लोगों से लगाव रखते हुए भी उसके अन्तर में एक अजीब सम्प्रक्त भाव था।

प्रदीप उसके साथ घंटों वाद-विवाद किया करता। वह चाहता था कि सत्य अपनी सभी मान्यताएं बदल दे, वह उसके जीवन-दर्शन को एक नई दिशा दे, जो उसे सबसे प्यार करना सिखाए। किन्तु जब दूसरे ही दिन वह कोई ऐसी बात कर देता जिससे यह प्रकट होता कि उस पर प्रदीप की किसी बात का कोई प्रभाव नहीं हुआ है तो उसे बहुत क्षोभ होता।

जिस दिन सत्य की शैला से पहली भेंट हुई थी उसी दिन प्रदीप से उसने कहा था—यार, आज तो एक बहुत बड़ी मुर्गी फंसाकर आ रहा हूं। कम से कम पांच लाख 'हार्डकैश' है उसके पास। मां-बाप कोई नहीं। एक चाची है। बूढ़ी खूसट। कुछ दिनों में उससे भी रास्ता साफ हो जायेगा। फिर ऐश ही ऐश है।

प्रदीप को सत्य की बातों में दुर्भावना की एक विचित्र सी गन्ध आई। उसके जी में आया कि वह सत्य के दोनों कन्धों को पकड़कर झकझोर दे और कहे—सत्य, तुम जिसे ऐश का सामान समझकर अपने जाल में फंसाना चाहते हो, कम से कम एक बार उसके मन की किताब में लिखी मासूमियत को तो पढ़ लो। हो सकता है वह तुम्हारे अन्तर की गहराइयों में अपना कोई खोया हुआ मोती ढूंढ रही हो। मैं नहीं कहता कि जीवन में हमारा जितने लोगों से सम्पर्क आता है वे सभी अच्छे और भले लोग होते हैं। लेकिन हमें कम से कम उसकी परख तो कर लेनी चाहिए। सबको झूठा और मक्कार समझकर हमें उनके साथ उपेक्षा का बर्ताव तो नहीं करना चाहिए—किन्तु प्रदीप यह सोचकर रुक जाता कि कहीं वह नाराज न हो जाये क्योंकि वह स्थिति उसे कतई सह्य नहीं होती।

सत्य में आज प्रदीप ने जो परिवर्तन देखा, उससे वह सहज ही

विश्वास नहीं कर सका। स्वयं सत्य के मन में जैसे विचारों का एक ज्वार सा उमड़ आया। आज तक वह जिस सच्चाई को मजाक उड़ाता रहा अब उस पर हंसने का साहस वह क्यों नहीं कर पा रहा है? जिन्दगी की राहों में चलकर शैला को वह जिस मंजिल तक खींच लाया था उस मंजिल पर पहुँचकर वह उससे कोई भी गलत लाभ बड़ी आसानी से उठा सकता था।

प्रदीप भी शैला से मिला था। शैला एक अमीर घर की फैशनेबल लड़की थी और उसके व्यवहार तथा मेल-जोल से उसने भी यही अन्दाज लगाया कि वह सत्य के इशारे पर सब कुछ वार देने के लिए तत्पर है। यह सत्य के हाथ में था कि वह उसे चरित्र की ऊँचाइयों पर ला बिठाये अथवा अन्धेरे के गर्त में डाल दे। होटल, रेस्तरां, पार्क, सिनेमा सभी जगह वह सत्य के साथ जाती। सत्य पर वह दिल खोलकर पैसा भी खर्च करती। बैंक के बहुत से दस्तखतशुदा ब्लैंक चैक उसने सत्य को दिए। किन्तु कभी क्यों सत्य ने उन्हें कभी नहीं भुनाया। वह चाहता तो उनका पैसा पानी की तरह बहा सकता था। आज वह बहुत बड़ी पूंजी उसके हाथों का खिलौना थी। मध्यमवर्ग के सत्य जैसे प्राणी के लिए ऐश की सारी राहें खुली हुई थीं फिर भी ......

रेस्तरां में पहुँचकर दोनों ने कॉफी पी और कुछ नहीं खाया। फिर कुछ देर उनकी टेबल के गिर्द खामोशी बनी रही। दोनों ने सिगरेट सिलगायी और धुएं के गुबार बनाते रहे। प्रदीप सत्य की ओर देखकर किंचित मुस्कुराया और बोला—तो क्या अब शैला से कभी नहीं मिलोगे?

हां, कभी नहीं।

वह माफी मांगेगी तब भी नहीं?—प्रदीप ने पूछा।

नहीं प्रदीप, वह कभी माफी नहीं मांगेगी और न मैं कभी उसे माफ कर सकता हूँ। अच्छा हुआ जो मैंने उसके जिस्म से अब तक कोई खिलवाड़ नहीं किया अन्यथा... सत्य ने गम्भीरता से कहा।

अन्यथा क्या ?

अन्यथा वह मेरे जीवन में सदा-सदा रिसनेवाला एक घाव बनकर रह जाता जिसकी पीड़ा सहन करने की सामर्थ्य शायद मुझमें नहीं है–त्य का यह कहते हुए गला भर आया था।

क्या वह तुमसे शादी करने को तैयार नहीं ?– पूछते हुए प्रदीप ने कॉफी समाप्त करके प्याले को प्लेट पर उलट दिया।

तैयार है। लेकिन एक शर्त है। शादी के बाद वह मुझसे नहीं रहेगी।

क्यों ? फिर शादी करने से फायदा?–प्रदीप ने औत्सुक्य से पूछा।

यही कि शादी के बाद वह अपने स्वर्गीय पिता की पाँच लाख की जायदाद की कानूनन अधिकारिणी हो जावेगी और तब मुझे उससे सम्बन्ध-विच्छेद करना होगा। क्योंकि मुझ जैसे मीडियम क्लास के युवक को वह अपने पति के रूप में सम्पूर्ण रूप से हमेशा के लिए स्वीकार नहीं कर सकती।

लेकिन तुमने क्या कहा ? तुम स्वयं भी तो यही चाहते हो ? पाँच लाख की मुर्गी ! ऐश ही ऐश ! आखिर सम्बन्ध-विच्छेद करने में दो वर्ष के करीब तो लगेंगे ही। इस अर्से में तुम उससे एक अच्छी खासी रकम वसूल कर सकते हो।

नहीं प्रदीप, मेरा उपहास मत करो। कल मैं जो कुछ सोचता था वह कदाचित जीवन का सत्य नहीं, असत्य की राह है। इस तरह ब्लेक-मेल करके मैं अपनी मंजिल नहीं पा सकता–सत्य ने कहा।

फिर उन प्रेजेन्ट्स और चैकों का क्या होगा ?

सब कुछ लौटा आया हूँ उसे। हमेशा के लिए उसके ऋण से मुक्त हो गया हूँ–कहते हुए उसके चेहरे पर गर्व की रेखाएं उभर आयीं।

प्रदीप ने सत्य के चेहरे की ओर देखा। उसे लगा कि कल और आज के सत्य में बहुत बड़ा अन्तर है। जिन्दगी की अन्धेरी राहों में आंख बन्द करके चलने वाले सत्य ने जैसे प्रकाश की राह पा ली हो। उसकी मान्यताओं ने जिन्दगी की थोथी सतह से हटकर एक मजबूत नींव बनाली हो। उसका जीवन-दर्शन आज बदल गया था। उसे लगा जैसे जीवन के पथ पर सत्य अन्धेरे को चीरता हुआ आगे बढ़ता जा रहा है""प्रकाश की ओर, पूर्ण प्रकाश की ओर। ❖

अंधेरे का जा

शाम होते होते उसके मन पर छायी उदासी का रंग और गह
हो गया। वह देर तक सोचती रही पर उसका चिन्तन कभी किसी निश्चि
बिन्दु पर नहीं ठहर पाया। कभी वह ढेर सारे अभियोग प्रभाव पर
देती, तो कभी यह सोचकर कि उसका चिन्तन एकपक्षीय है—स्वयं
दोषी ठहराने लगती। फिर एक ऐसी स्थिति आती जब वह झुंझला
ऊबकर इस विचार से अपना पीछा छुड़ाने की भरपूर कोशिश करती,
वह ऐसा नहीं कर पाती। चिन्तन की छाप उसके मन पर बहुत गह
पड़ी थी। इतनी गहरी कि सरलता से उसका मिटना संभव नहीं था।

सिंता के कमरे में हल्के नीले रंग के बल्ब का मद्धिम प्रकाश फै
रहा था और वह निढाल अपने पलंग पर पड़ी प्रभाव और अपने संबं
के विषय में सोच रही थी। जबसे उसने सुना था कि प्रभाव ने दूसरी शा
करली, उसकी सौत ले आया, तभी से उसके मन पर नफरत, घृणा औ
दुख का भार जमने लगा था। यद्यपि उसे अब प्रभाव की किसी भी क्रि
पर रोक लगाने का अधिकार नहीं रहा था। शिकायत करने का भी ह
नहीं था। किन्तु फिर भी न जाने क्यों आज वह यह सब जानकर दुखी
गई। उसने अपने आपको उपेक्षित सा महसूस किया। दाम्पत्यभाव
अतिरेक जो अब तक बदहवास सोया पड़ा था घृणा की चोट पाकर
अचानक जाग पड़ा। एक अनाम दुराव, जो उसके मन के किसी कोने
छिपा सांस ले रहा था, तड़पकर चीखने लगा।

लगभग पाँच वर्ष पूर्व जब वह प्रभाव की पत्नी कहलाती थी, व्याहता पत्नी, प्रभाव उसे कहा करता-सित्ता, मॉडर्न एज की युवतियों को एडवांस होना चाहिये। घर में पड़े रहने की बजाय सार्वजनिक क्षेत्र में आने की चेष्टा करनी चाहिये। तुम घर के काम-काज में पिसने के लिए नहीं हो सित्ता, तुम्हें तो देश में नाम करना है। एक कलाकार, एक साहित्य कर्मी के रूप में तुम्हें जगमगाना है– कहते हुए वह उसकी ओर अपनी सुदृढ़ मजबूत बाहें फैला देता। वह मंत्रमुग्ध सी खिंचकर उसके बाहुपाश में पहुँच जाती।

सित्ता कहा करती—मैं सब कुछ बन सकती हूँ प्रभाव, लेकिन मुझे हर कदम पर तुम्हारे सहारे की जरूरत है। उसके बिना तो मैं एक कदम भी आगे नहीं बढ़ा सकती। और प्रभाव उसके समर्पित चेहरे पर स्नेहसिक्त चुम्बनों की बरसात कर देता।

जब से सित्ता ने प्रभाव पर अपने शौक जाहिर किए थे, तभी से वह उसकी प्रगति के साधन जुटाने लगा था। सित्ता ने चित्रकला में रुचि दिखाई तो अच्छे से अच्छे रंग-ब्रशेज उपलब्ध किए। सित्ता का कमरा किसी अच्छे खासे कलाकार का कक्ष-अध्ययन लगता। एक बार उसने प्रभाव को स्वरचित नई कविता सुनाई तो वह बहुत खुश हुआ और दूसरे ही दिन उसने सित्ता की टेबल पर देश की प्रमुख साहित्यिक पुस्तकों और पत्रिकाओं के अम्बार लगा दिए।

प्रभाव का विचार था कि उचित अवसर और साधन के अभाव किसी भी कलाकार की योग्यता कुंठित हो सकती है। सित्ता में उसने टें देखा तो उसके विकास के लिए बराबर प्रयत्न करता रहा। उसकी सृजनात्मक शक्ति के विकास के लिए बराबर प्रयत्नशील रहता। उसके कार्य की सराहना करता।

सित्ता कविता लिखती तो वह स्वयं उनमें उचित संशोधन करके

पत्रिकाओं में छपने के लिए भेज देता। कविता छप जाती तो ठीक, अन्यथ
न छपने पर भी प्रभाव उसे निराश नहीं होने देता।

प्रभाव सित्ता को सब तरह से खुश रखने की चेष्टा करता। को
सांस्कृतिक कार्यक्रम होता, नई फिल्म लगती या कभी किसी मित्र के यह
दावत होती तो सित्ता उसके साथ जाती। अपने काम से फुर्सत पाक
सीधा घर आता और सित्ता के पास घंटों बैठा रहता।

प्रभाव योग्य और पढ़ा-लिखा आदमी था। पर उसमें एक बहुत बड़
कमजोरी थी, वह थी उसकी उत्तेजित काम भावना। कभी-कभी
सित्ता को उससे बहुत कोफ्त होने लगती। कारण यह था कि प्रभाव इस ओ
प्रवृत्त होता हुआ प्रायः रात और दिन का भी विचार त्याग देता था। उ
समय उसका स्वरूप अत्यन्त भयंकर, स्वभाव अत्यन्त निर्दयी और भावना
अत्यधिक कठोर हो जाती। बेचारी सित्ता अपने आपको पीड़ित सी महसू
करने लगती। उसे लगता जैसे उसके प्रति प्रभाव का सम्पूर्ण स्नेह, आस
इसी स्वार्थमयी काम भावना से संचालित है। यह सोचकर उसके मन
जलाशय में एक विद्रूप हलचल पैदा होने लगती।

उसने कई बार प्रभाव को स्वयं पर संयम रखने का आग्रह किया था
पर प्रभाव स्वयं नहीं जानता था कि ऐसा करते समय उसके मन में क
सा तनाव घिर आता है। उसकी क्रियाओं में कैसी अपराध भावना समा
लगती है।

जब सित्ता ने एक लम्बे अर्से के बाद भी प्रभाव की काम भावना
कोई कमी या परिवर्तन नहीं देखा तो उसे एक चिढ़ सी होने लगी औ
इसी चिढ़ के वशीभूत होकर उसने एक दिन प्रभाव को बुरा-भला
कह दिया। प्रभाव ने सित्ता की बात का बुरा नहीं माना और चु
रह गया।

प्रभाव उन लोगों में नहीं था जो अभावों को ओढ़कर उनमें घ
जाते हैं। तो जाते हैं। कई दिनों तक उसका मानसिक तनाव ऍठा औ

तपता रहा पर फिर धीरे धीरे अन्तर की अप्रकट जुगुप्सा ने सीधे
आत्म प्रकाशन की टेढ़ी-मेढ़ी राह खोज ली। वह अब घर में कम
बाहर अधिक रहने लगा।

कार्यालय से सीधा क्लब पहुँच जाता। वहाँ से रेस्तराँ, सिनेमा
फिर रात को थककर चूर लौटता और अपने बिस्तर पर औंधा
रहता। कई-कई बार उसकी टाँगें और जुबान लड़खड़ाई होती।
प्रायः यही चेष्टा करता कि वह घर में सिता के सो जाने के बा
ही पहुँचे।

उसका मिलना-जुलना अब प्रायः मिसेज कान्ता से रहता जो शहर
की एकमात्र महिला टूरिस्ट गाइड, और निहायत स्वतन्त्र स्वभाव की
औरत थी। यों मिसेज कान्ता के विषय में लोगों की धारणा कोई बहुत
अच्छी नहीं थी फिर भी उसके आकर्षक व्यक्तित्व से प्रभावित होकर सभी
उससे मेलजोल बढ़ाने की चेष्टा में रहा करते।

उन दिनों उनके यहाँ बेबू का जन्म हुआ। उनकी प्रथम सन्तान।
किन्तु प्रभात को उसके आगमन से विशेष हर्ष नहीं हुआ। बस, सब-कुछ जैसे
साधारण दिनचर्या की भाँति हो गया हो।

सिता प्रभात के किसी कार्यकलाप से बेखबर नहीं थी। उसे इस बात
का एहसास था कि अब प्रभात को उसमें बहुत कम दिलचस्पी रह गई है।
न वह उसकी कविता पसन्द करता है और न उसे उसके कैनेवस देखने
से सुख मिलता है। सांस्कृतिक कार्यक्रमों में वह अब उसको सा
का आग्रह नहीं करता। उसके सुखी गृहस्थ जीवन में कलह की आग
के लिये एक औरत भी खड़ी हो गई है। उसे लगा जैसे उनके संब
नींव ढीली हो गई है। आत्म परिचय की गाथा जो विश्वास से शुरू हु
उसमें अविश्वास के टुकड़े की गाँठ पड़ती जा रही है। उसके म
मन पर आक्रोश का रंग दिन ब दिन गहरा होता जा रहा है।

आज सिता अब उन सब घटनाओं और परिस्थितियों का मूल्यांक

करने बैठी तो उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि मात्र प्रभाव की उपेक्षा ने ही नहीं, अपितु स्वयं उसके नारीमन की सहज ईर्ष्यालु प्रवृत्ति ने भी उन दोनों के बीच दूरियों की खाई को गहरा बना दिया है। अपने पारिवारिक जीवन की पृष्ठभूमि में पनप रहे जहरीले पौधे को उखाड़ फेंकने की उन दोनों में किसी ने कोशिश नहीं की, बल्कि दोनों ही उसे रोष और घृणा के पानी से सींचते रहे। उसी पौधे ने फैलकर अपने जहर से उनके पारिवारिक जीवन को शून्य और निष्प्राण कर दिया। तीन वर्ष बाद उन दोनों के मध्य पनप रही कुंठाओं के परिणामस्वरूप तलाक हो गया।

सिता और प्रभाव के वैवाहिक जीवन के पाँच वर्षों को यों विभाजित कर सकते हैं। पहले दो वर्ष खुशी और हर्ष का समय। तीसरा वर्ष सन्देह, कुण्ठा और घृणा की दीवार खड़ी करने वाला। चौथा और पाँचवाँ वर्ष जब वे दोनों कहने मात्र को पति-पत्नी रहे। एक दूसरे से अलग क्योंकि अदालत का ऐसा ही आदेश था। जब तक वे इस अवधि तक अलग नहीं रहते, तलाक मन्जूर नहीं किया जा सकता था।

पिछले दिनों कोर्ट से तलाक मन्जूर हो गया था। अदालत ने उनकी संतान को बाप के पास रखने की आज्ञा दे दी। सिता भी यही चाहती थी। सिता के मन से प्रभाव की और बातें भले ही अब अपने हल्के रंग में रह गई थीं, किन्तु फिर भी अपने आपको पूर्ण रूप से मुक्त और स्वतन्त्र समझ सकने की क्षमता उसमें नहीं थी। यों प्रकट रूप में उसने तलाक दे दिया था पर तब भी उसे स्वयं पर प्रभाव का नियन्त्रण एक पति के रूप में सदा ही छाया हुआ सा लगता।

वह इस नियन्त्रण से छुटकारा पा लेना चाहती थी। वह सदा चाहती थी– अब उसे वह स्वतन्त्र जीवन शुरू करना चाहिए जिसकी कल्पना वह कभी किया करती थी। साहित्य, संगीत, कला सभी का अभ्यास करने में अब उसे कोई रोक-टोक नहीं। उसके पिता शहर के धनाढ्य लोगों में से हैं। तलाक देने में उसके पक्ष में भी रहे। उसका पीहर ससुराल से कुछ

कम सम्पन्न नहीं था। रुपया-पैसा सब कुछ मिल सकता था उसे अपने पिता से। वह निश्चय ही अपनी कलात्मक प्रवृत्तियों को निखारेगी। उसने मन ही मन सोचा········।

किन्तु आज········जब उसने सुना कि प्रभाष ने किसी दूसरी लड़की से शादी करली तो उसकी ईर्ष्या जाग गई। वह तड़प उठी। उसके मस्तिष्क में अन्धेरे के घने साये सरक आए। उसकी विचार-शक्ति पर नफरत के जाल फैल गये। वह स्वयं नहीं जानती कि किस शक्ति के वशी-भूत होकर ऐसा हुआ। उसके मन में एक बात उपजी। क्यों नहीं वह स्वयं भी नितिन से मिलना जुलना शुरू कर दे। जब प्रभाष किसी दूसरी लड़की से शादी कर सकता है तो वह पीछे क्यों रहे? वह भी प्रभाष को दिखा देगी कि उसे भी अपना नया साथी चुनने का पूरा अधिकार है।

नितिन, शर्मा परिवार का एक विधुर युवक था। कोई तीस या चालीस गज की दूरी पर उसका मकान था, जहाँ वह अकेला रहा करता था। लम्बा और सुन्दर युवक। गठीला बदन। स्थानीय रेडियो केन्द्र में किसी अच्छे पद पर काम कर रहा था। वह सित्ता के पिताजी के पास अक्सर गप्पें हाँकने आया करता। सित्ता के पिता को राजनीति में खूब दिलचस्पी थी। नितिन उनसे घुल घुलकर इस विषय में बातें किया करता। सित्ता भी चाय लाती और उसके पास बैठी बातें किया करती। उसने नितिन का झुकाव अपनी ओर पिछले दिनों देखा था। वह स्वयं भी उसके व्यवहार से थोड़ी प्रभावित हुई थी।

एक शाम जब नितिन तैयार होकर घर के बाहर जाने को था तो सित्ता सज धजकर उसके घर पहुँच गई। सित्ता को अपने यहाँ आया देख वह पहले तो उसे फटी-फटी आँखों से ताकता रहा फिर हर्षित होकर बोला—अरे सित्ता, आज हमारे गरीबखाने को कैसे पवित्र कर दिया? कहिये क्या सेवा कर सकता हूँ?– और अपनी ओज भरी नजरें समर्पण भाव से उसने सित्ता पर गड़ा दीं।

में घूम आती। विशेषकर उन अवसरों पर जब उसे पता चल जाता कि प्रभाप अमुक जगह पर गया हुआ है।

इसी बीच नितिन उसके बहुत करीब आ गया। अब उन दोनों के मध्य बातचीत की साधारण दूरियां खत्म हो चुकीं थीं। सित्ता उससे खूब हंस खिलकर बातें करती और नितिन सित्ता से।

एक रात जब सित्ता के पिता किसी काम से बाहर गए हुए थे, नितिन उसके कमरे में आ गया। तब रात के कोई ग्यारह बजे होंगे। सित्ता उसके अप्रत्याशित आगमन से घबरा सी गई पर फिर सम्भलकर उसे बैठने को कहा। पर वह बैठा नहीं। और सित्ता की ओर बढ़कर बोला—सित्ता, मैं आज तुमसे सच्चा साक्षात्कार करने आया हूं। मैं तुमसे प्यार करता हूं। मुझे अपने साहचर्य से पवित्र कर दो सित्ता। अब यह प्यास नहीं सही जाती–उसकी आंखों में गर्म शोले जलते हुए दिखाई दे रहे थे।

सित्ता एकाएक उससे दूर हटाते हुए बोली—नहीं, नहीं नितिन तुमने गलत समझा है। तुम इस इस समय अपने होश में नहीं हो। अभी तुम चले जाओ।

पर नितिन गया नहीं। वहीं खड़ा प्यास-भरी आंखों से उ ताकता रहा।

सित्ता के सामने आज अपनी ही भूलें प्रेत बनकर नाचने लगीं यं उसने नितिन को इस सीमा तक बढ़ आने का जो मौन निमंत्रण या था वह उसके शरीर में जहर बनकर उतरने को था। नितिन के साथ ारे हुए एक एक क्षण पर आज उसे पश्चाताप हो रहा था। नितिन से ते-मिलते उसने कभी उसके साथ कोई पाप करने की बात नहीं सोची । वह नितिन से विवाह की आकांक्षी भी नहीं थी। वह तो महज इस उसके साथ रहती थी कि ऐसा करते देख वह पति को जला सके, को जला सके, समाज को जला सके। किन्तु आज अपना ही भार उसे पर लगता हुआ दिखाई दे रहा।

आदमी में काम वासना की एक विशेष भूख होती है। वह साधारण-या किसी भी औरत को पाकर सतुष्ट हो जाता है। किन्तु नारी, वह ो अपने पति की, अपने इष्ट की जन्म-जन्म की पुजारिन होती है। वह सी दूसरे आदमी के साथ सुखी नही रह सकती। अगर वह किसी दूसरे ादमी का हाथ पकड़ती है तो सिर्फ अपने मन में सहज रूप से उत्पन्न ी जाने वाली ईर्ष्या को राह देने के लिए। ईर्ष्या करने में उसे एक खास रह का तोष मिलता है। उसी के वश वह अपने गिर्द अंधेरे का एक ाल सा बुन लेती है, और इस जाल मे बराबर उलझती जाती है। कभी भी तो इस जाल के डोरे इतने मजबूत हो जाते हैं कि उनके घेरे से निकलना प्राय: असम्भव सा हो जाता है। सिता भी आज अपने आपको ठीक ऐसे ही जाल में उलझा हुआ महसूस कर रही थी।

अपनी सम्पूर्ण शक्ति से चीखते हुए उसने नितिन से कहा—चले ज'ओ। मुझे तुमसे कोई मतलब नहीं। मैंने तुमसे कभी प्यार नहीं किया। कभी नही चाहा। कभी नही—और सिसकियों के साथ ही उसकी आँखों से अविरल अश्रु धार बह चली।

नितिन भारी कदमों से चलकर कमरे के बाहर हो गया। ❖

पहचान

विभाग के मुख्य कार्यालय के अधिकारी इस बात से अधिक चिंतित नहीं थे कि जिस गाँव का दौरा करने के लिए मंत्री महोदय ने कहा है, वहाँ उनका स्वागत कैसे होगा, बल्कि उन्हें आश्चर्य इस बात का था कि आखिर मंत्री जी ने जैतरन जैसे छोटे से नगण्य गाँव को अपने दौरे के लिए चुना कैसे ? लेकिन क्योंकि मंत्री महोदय ने इस विभाग को नया-नया ही सम्भाला था, और मुख्यालय के अधिकारियों में से उनका कोई विशेष परिचित अथवा मुँह-लगा व्यक्ति भी नहीं था। अतः इस समाचार की प्रतिक्रिया स्वरूप उनसे किसी ने कुछ कहा या पूछा नहीं। अधिकारियों के सामने दो समाधान थे। एक तो यह कि कार्यालय के सभी अधिकारी एवं कर्मचारी जैतरन में उनका स्वागत सत्कार करने में जुट जायें और मंत्री महोदय के सामने जैतरन को एक आदर्श ग्राम के रूप में प्रस्तुत करें। दूसरा यह कि यह सारी जिम्मेदारी उस विकास अधिकारी के कन्धों पर डाल दी जाए जिस क्षेत्र में जैतरन गाँव पड़ता है।

क्योंकि समय केवल दो दिन का था और जैतरन जैसे सर्वथा पिछड़े हुए गाँव की छटा बढ़ा-चढ़ाकर दिखाना असम्भव नहीं तो टेढ़ी खीर अवश्य थी। अतः मुख्यालय के अधिकारियों ने अधिकारी गुलम तरीके से सम्बन्धित विकास अधिकारी को मंत्री महोदय के दौरे के सम्बन्ध में तार द्वारा सूचना भिजवा दी। यह हिदायत भी दे दी कि उनका स्वागत जैतरन गाँव में बड़ी धूम-धाम से होना चाहिए। उन्हें ऐसा लगना चाहिये कि

कि कृषि के साथ-साथ गाँव में शिक्षा का प्रसार एवं उद्योग-धंधों आदि सभी का विकास हुआ है।

एक बात जो अधिक महत्वपूर्ण थी वह यह कि विकास अधिकारी को इस मौके पर अधिकाधिक रकम खर्च करने की छूट दे दी गई थी। मंत्री महोदय पहली बार जैतरन गाँव की 'विजिट' पर आ रहे थे। उन्हें इस बात का पता तो चलना चाहिए कि गाँव में कितनी खुशहाली है।

विकास अधिकारी जो अपने कमरे में लगभग सो रहे थे, तार को पढ़-कर जैसे एकाएक जाग पड़े और अपने सभी सहयोगियों को उन्होंने तुरन्त अपने कमरे में बुला भेजा। विकास अधिकारी ने कहा—मुख्यालय से तार आया है कि कल मंत्री महोदय जैतरन गाँव के दौरे पर पधार रहे हैं। नये मंत्रिमंडल में आने के बाद यह उनका पहला दौरा है और वह भी जैतरन जैसे छोटे ग्राम में। जैतरन हमारे विकास खण्ड के अन्तर्गत एक छोटा और पिछड़ा हुआ गाँव है। हमारे पास केवल एक दिन है और यह विभाग की प्रतिष्ठा का सवाल है। मेरा पक्का विश्वास है कि आप लोग इतने कम समय में जैतरन की काया पलटकर मंत्री महोदय को दिखाने और उनका धूम-धाम से स्वागत करने में मेरी मदद करेंगे। आपको याद होगा, पिछली बार जब पुराने मंत्री बराग गाँव में आये थे तो हमने रात-दिन मेह-नत करके उसके रंग-रूप को सुधारा था? ठीक ऐसा ही करना है अब।

सभी बड़े शांत भाव से विकास अधिकारी की बात सुन रहे थे। एक क्लर्क ने जरा हिम्मत करके पूछा—लेकिन साहब, तब तो हमारे पास अनाप-सनाप पैसा खर्च करने के आर्डर थे। रुपया पानी की तरह बह रहा था। लेकिन एक बात जरूर थी। मंत्री महोदय बहुत खुश होकर लौटे। फिर उसने इधर-उधर देख-कर झिझकते हुए कहा—और साहब सब तो हम सबके पल्ले भी कुछ न कुछ पड़ ही गया था।

विकास अधिकारी ने कहा—खर्च की चिंता मत कीजिये, हमें इस बार भी खूब खर्च करने के अधिकार दिए गए हैं। बस, एक बात का ध्यान

रखिये ! जैसे भी हो, परसों सुबह तक मंत्रीजी के स्वागत की तैयारियाँ पूरी हो जायँ।

उसके बाद मंत्रीजी के दौरे के दो घण्टों के कार्यक्रम की चर्चा की गई। इस खण्ड के विकास अधिकारी महोदय अपने दर्जे के अन्य अधिकारियों से कहीं ज्यादा योग्य और गतिशील कार्यकर्ता गिने जाते थे। उन्हें अपनी योग्यता का पूरा परिचय देना था। उन्होंने बड़े योजनाबद्ध तरीके से जैतरन गाँव में मंत्री महोदय के स्वागत-सत्कार की तैयारियाँ शुरू कीं। छोटे-छोटे गाँवों में लगे अपने सभी कार्यकर्ताओं को तुरन्त खण्ड के प्रधान कार्यालय में बुला भेजा। उनमें से अस्सी प्रतिशत विकास खण्ड के मुख्य कार्यालय में पहले से ही मौजूद पाये गये। कृषि-विकास दिखाने के लिए रातों-रात एक कृत्रिम खेत तैयार करने की योजना बनाई गई। इधर-उधर के गाँवों के अच्छे से अच्छे काश्तकारों को मंत्रीजी से मिलाना था। शिक्षा के प्रचार-प्रसार का दिग्दर्शन कराने वाली एक छोटी सी प्रदर्शनी भी उन्हें दिखाई जानी थी। ग्रामीण बालकों द्वारा राष्ट्रगान और आदर्श पाठशाला का निर्माण तथा उसके लिए विद्यार्थियों को एकत्रित किया जाना आदि। सभी कुछ कृत्रिम या बनावटी और वह भी एक दिन और एक रात में।

विकास अधिकारी को पहले भी ऐसे आयोजन करने तथा वाहवाही लेने का अनुभव था। मनमाना पैसा खर्च कर सकने की सुविधा के कारण वे इस बार भी कमर कसकर तैयार हो गये थे।

अलग-अलग व्यक्तियों के जिम्मे अलग-अलग कार्य सौंप दिये गये। सभी को रुपया खर्च करने की पूरी छूट थी। जैतरन से नजदीक वाले बड़े शहरों की ओर कोई आठ जीप गाड़ियाँ दौड़ पड़ीं। उतनी ही गाड़ियाँ विकास खण्ड के अन्तर्गत आने वाले अन्य गाँवों में दौड़ रही थी।

गाँव के अन्दर जीतू अहीर की जमीन पर एक कृत्रिम खेत तैयार किया गया। ट्रैक्टर से जमीन जोती की गई। आस-पास बाड़ लगाई और

पास के गाँव से मंगाए गए ज्वार, बाजरा, मक्का के अच्छे से अच्छे सिट्टे कमल रूप में खड़े कर दिए गए। खेत में सरकार की ओर से दी जाने वाली रासायनिक खाद की बोरियाँ रख दी गईं। उन्नत औजार इधर-उधर पटक दिये।

भीखू कुम्हार ने गाँव में पक्का मकान बनाया था। उसे सौ रुपये थमाये और उसे अपने ससुराल के गाँव चले जाने को कह दिया। उसके मकान में गाँव की आदर्श पाठशाला बनाई गई। गाँव के टूटे-फूटे कुए की दस मजदूरों ने मिलकर मरम्मत की और उसके गिर्द पक्की दीवार और चबूतरा बना दिया गया। कबूतरों का चुग्गाघर, गायों के घास का थान और बच्चों के लिए खेल का मैदान भी बनाया गया। पंचायत घर में एक शिक्षा एवं प्रगति प्रदर्शनी लगाई गई। प्रदर्शनी का मुख्य आकर्षण महात्मा गांधी, प. नेहरू, डा. राजेन्द्र प्रसाद आदि नेताओं के बीच में मढ़े हुए बड़े-बड़े चित्र थे।

शिक्षा की प्रगति के आंकड़े, ग्राफ्स और चार्ट्स बनाकर दिखाए गए थे। उस दिन आस-पड़ोस के समझदार लोगों को भाड़ा देकर बुलाया गया था। मंत्री महोदय के स्वागत के लिए शामियाना लगाकर एक छोटा सा मंच भी तैयार किया गया।

दूसरे दिन की भोर होते-होते जैतरन गाँव की काया पलट हो चुकी थी। बरसों से जिसकी कभी देखभाल नहीं की गई, उस गाँव में जादुई परिवर्तन हो गया था। पलक झपकते ही वह एक आदर्श ग्राम बन चुका था। इतना जरूर था कि सरकारी खजाने से किया जा रहा व्यय भी अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गया था।

सुबह आठ बजे तक जैतरन गाँव में मुख्यालय तथा सचिवालय के कुछ अधिकारी पहुँच चुके थे। सर्वत्र विकास अधिकारी के प्रयत्नों की प्रशंसा की जा रही थी। कुछेक ने तो उन्हें बेहद योग्य और समझदार बता

र वे कार में बैठ गये। पाँच सात मोटरें तथा जीपें और भी साथ थीं। त्रीजी की कार के चलते ही वे भी चल पड़े।

जैतरन गाँव से कोई दस-पन्द्रह मील दूर पहुँचने पर मंत्री महोदय की कार एकाएक रुकी और वे उतरकर विकास अधिकारी की जीप की तरफ आये। विकास अधिकारी जीप से उतरकर हाथ जोड़कर उनके सामने खड़ा हो गया तथा उनके कथन की प्रतीक्षा करने लगा। मन्त्रीजी ने गम्भीर स्वर में कहा—आप मेरे साथ आइये।

विकास अधिकारी जैसे किसी अज्ञात भय की आशंका से काँप उठा। साहस करके मंत्री महोदय के साथ हो लिया। उससे कोई तीस कदम दूर चलने के बाद मंत्री महोदय बोले—आप निहायत झूठे और मक्कार आदमी हैं। शायद आप समझ रहे हैं कि झूठ और धोखाधड़ी का यह आदर्श ग्राम निर्माण करके आपने मेरी आँखों में धूल झोंक दी होगी। मगर यदि रखिये, यह कृत्रिम और बनावटी प्रबंध करके आप केवल मुझे ही मूर्ख बनाने की कोशिश नहीं कर रहे, बल्कि समूचे देश को धोखा दे रहे हैं। जानते हैं—धोखे का यह सिलसिला एक के बाद एक, छोटे से छोटे कर्मचारी को भ्रष्ट और गैर-जिम्मेदार बना रहा है। साल भर पड़े ऊँघना और वक्त पड़ने पर सरकारी खजाने को लूटकर केवल अपने अधिकारियों को प्रसन्न करने की प्रवृत्ति ही सबसे घातक प्रवृत्ति है!

विकास अधिकारी हतप्रभ हो, सर झुकाये खड़ा रहा। उससे कुछ भी बोलते नहीं बन रहा था। मन्त्रीजी कह रहे थे—इस और प्रबंध का दृश्य आप दिखाकर आप एक भी आदमी का हित नहीं कर सकते। जानते हैं, इस धोखे और प्रबंध से सारे देश की जड़ें खोखली हो रही हैं। मैं चाहता तो एक मिनट में ग्राम महिलाओं और बालकों का वेश्भूषा उतार देता। आपके सजाये हुए कृत्रिम मिट्टी को एक क्षण में उखाड़ फेंकता। लेकिन मैंने ऐसा नहीं किया। आप आज की बात से सबक ले लें तो अच्छा है। मैं आपको एक मौका देना चाहता हूँ। मगर आप हो धोखे का व्यापार

करते रहे तो सोचिये, देश की भावी पीढ़ी का क्या होगा ?—फिर कुछ रुककर बोले—जाइये पाठशाला के उन झूठे बोर्डों को उतरवाने और बनावटी सिट्टों को उखड़वाने का प्रबन्ध कीजिये ! भविष्य में ऐसा जघन्य कार्य कभी मत दुहराइये !

विकास अधिकारी कुछ निर्णय नहीं कर पाया कि वह मंत्री के पाँवों में गिरकर क्षमा प्रार्थना करे या अपने किये पर पछताकर लौट जाये। वह मिट्टी की मूर्ति की भाँति अविचल खड़ा रहा। तभी उसे कारों के स्टार्ट होने की ध्वनि सुनाई पड़ी। वह जैसे चौंक गया। मंत्री महोदय एवं मुख्यालय के अधिकारियों की कारें स्टार्ट हो चुकी थीं। वह देखता रहा कारों के घूमते हुए पहिये और उनसे उड़ती हुई रेत की धुंध !

अवरोध : अनुरोध

मनमोहन कार्यालय से तो समय पर बाहर आ गया। किन्तु घर नहीं गया। दरवाजे पर पहुंचा कि प्रतिदिन की भांति दिनेश ने पूछा—लाइब्रेरी चलोगे ?

हाँ, चलो—मनमोहन ने आज पहली बार दिनेश के इस आग्रह को स्वीकारा था। उसकी लाइब्रेरी जाने मे विशेष रुचि कभी नहीं रही। इसी कारण उसके कार्यालय का अध्ययनशील मित्र दिनेश नित्य उसे व्यंग्यपूर्ण ढंग से लाइब्रेरी चलने का आग्रह करता है। मनमोहन से पहली बार 'हाँ' सुना तो अपने कानों पर विश्वास नही कर सका। दूसरी बार फिर पूछा—मैं तुम्हें लाइब्रेरी चलने के लिए पूछ रहा हूँ।

जी हाँ। मैंने सुन लिया है। अपनी साइकिल उठाओ और चलो—मनमोहन इतना कह साइकिल पर चढ़ने का उपक्रम करने लगा।

दिनेश ने देखा मनमोहन की भंगिमा आज कुछ अधिक गम्भीर है। उसके चेहरे पर दुःख की धुन्धली सी रेखाएं उभरती जा रही हैं। उसे लगा जैसे वह किसी विचार मे डूबा हुआ है।

दोनों आफिस से निकलकर मुख्य सड़क पर आ गए थे। खामोशी को तोड़ते हुए दिनेश ने पूछा— क्या बात है, मनमोहन ? आज कुछ अधिक परेशान नजर आ रहे हो ?

नही तो, ऐसी कोई बात नहीं—मनमोहन ने अपने चेहरे के भाव छिपाते हुए कहा और एक रूखी सी मुस्कुराहट बिखेर दी।

पर दोनों के बीच खामोशी का पर्दा नहीं हटा
विचारों में खो गया। आज उसे रह-रहकर अपने घर
स्थिति का ख्याल सालता रहा था। बार-बार उसके कानों में
विमला के प्रश्न गूंज रहे थे जिनका उत्तर आज फिर वह
उससे पूछेगी। आज सुबह भी परेशान होकर विमला ने कहा
स्कूल की फीस का प्रबन्ध अब तक नहीं हो पाया है। कुन्दन
साइकिल के लिए मचल रहा है। बिल्लू की सर्दियाँ क्या गर्म क
ही गुजरेंगी ? उसे याद है, इन प्रश्नों में से किसी का भी उत्तर
तरह से नहीं दे पाया था। तब से उसके मन में निराशा के अजी
पल रहे हैं।

दिनेश के साथ लाइब्रेरी चलते समय उसने सोचा था कि
सभी चिंताओं से कुछ समय के लिए मुक्त रह सकेगा। किन्तु घर
जितना दूर जा रहा था उसके विचार उसे घर के और अधिक समी
रहे थे।

वह अपने बच्चों और पत्नी के विषय में सोच रहा था, उसके
तो तीन ही सन्तानें हैं। लोगों के घर तो आम तौर से छः छः, सात-स
सन्तानें खेलती हैं। फिर भी पति और पत्नी के मध्य पर्याप्त प्रेम अ
आकर्षण बना रहता है। प्यार का वातावरण बना रहता है। फिर विमल
को जाने क्या हो गया है ! उसकी कोई खास उम्र भी नहीं। आज से छ
ाल पहले जब वह दुल्हन बन कर आई थी तो क्षण भर भी उससे बिछुड़ने
ा भी नहीं करता था। किन्तु अब तो उसके चेहरे से वे सभी भाव जैसे
ा में उड़ गए हों। लगता ही नहीं कि कभी वह उसकी प्रेयसी
णा रही हो। ब्याह के बाद उसके

यही सोचता हुआ वह सड़क पर एक तांगे से टकराता पर दिनेश ने पकड़ कर बचा लिया । उसे ख्याल ही नहीं रहा कि वे लाइब्रेरी पहुँच गए हैं ।

लाइब्रेरी पहुँचकर भी वह किसी पुस्तक अथवा पत्रिका को नहीं पढ़ सका । कहीं अपना ध्यान केन्द्रित करके मस्तिष्क में उठ रहे विचारों पर काबू नहीं पा सका । कुछ क्षण भी ऐसी स्थिति में नहीं आ सका कि टेबल पर पड़ी पत्र-पत्रिकाओं को ध्यान से उलट-पलट कर देख लेता ।

लाइब्रेरी में मनमोहन अधिक नहीं रुका और दिनेश को सूचना दिए बिना ही पब्लिक पार्क की ओर चल दिया । शाम हो चली थी । रात का अन्धेरा भी कदम बढ़ाए चला आ रहा था । पार्क में भी सब लोग उसे अजीब और अनजाने लगे । एक क्षण मस्तिष्क में किसी मित्र के यहाँ चले जाने का ख्याल आया पर दूसरे ही क्षण उसे त्याग भी दिया ।

घर पहुँचा तो उसने बेहद थकान का अनुभव किया । मानसिक और शारीरिक दोनों थकानें । बरामदे में जूते खोलने के बहाने देर तक खड़ा रहा । घर में लगभग सन्नाटा था । कोई बच्चा उससे लिपटने बाहर बरामदे तक नहीं आया । मनमोहन ने इसकी जरूरत भी महसूस नहीं की ।

धीरे-धीरे कदम उठाता हुआ अन्दर के कमरे में पहुँच गया । सामने देखा तो कुछ समझ नहीं पाया । खाट पर बिल्लू कम्बल ओढ़े सो रहा था । विमला, कुन्दन और लल्ली उसके पास बैठे थे । मनमोहन ने कोट उतारा और पास पड़ी कुर्सी पर बैठ गया । विमला से पूछा-क्या हुआ इसे ?

विमला ने कोई उत्तर नहीं दिया । एक निराश नजर से देखा भर और बिल्लू का कम्बल ठीक करने लगी ।

तभी लल्ली, जिसने अपने पिता के प्रश्न को ठीक तरह से सुना था, बोली—बाबूजी ! बिल्लू को दोपहर से बुखार आ रहा है । माँ तभी से इसके पास बैठी है । खाना भी अब तक नहीं खाया ।

अच्छा, क्या दवाई दी है इसे ?

जी, विमला ने रूखा सा अधूरा उत्तर दे दिया।

लेकिन घर में तो सब्जी लाने को भी पैसे नहीं थे। फि पड़ोसी से लिए क्या?

नहीं तो–विमला ने उसी सुस्त भाव से कहा और बिल्लू कं देखने लगी।

मनमोहन ने आगे कुछ नहीं पूछा। वह समझ गया कि विम उन रुपयों में से खर्च कर दिया है जो उसके पिताजी ने उसे मैके आने लिए भेजे थे। उसने उठकर बिल्लू के बदन पर हाथ रखा। शरीर बुः से तप रहा था। वह कुछ अनमना सा हो रहा।

उसने देखा, विमला के चेहरे पर पीड़ा के अजीब से भाव तिर आए हैं। उसके बाल बिखरे हुए हैं और कपड़े भी ठीक तरह से नहीं पहन रखे हैं। जैसे वह बहुत थक गई है।

कुछ देर वातावरण में चुप्पी छायी रही। विमला उठ कर खाना पकाने चली गई। जब सब खाना खा चुके तो बर्तन-चौका करके फिर बिल्लू के पास आकर बैठ गई। उसी निराश भाव से। सुस्त सी। बिल्लू की ओर नजर गड़ाए।

रात को मनमोहन की नींद खुली तो उसने विमला को जागता पाया स्वयं जागने को कहकर उसे आराम करने के लिए भेज दिया।

सुबह बिल्लू का बुखार कम हो गया था। विमला की चिन्त कुछ कम हुई। रोज की तरह वह घर के विविध कामों में जुट। मनमोहन दैनिक कार्यों से निवृत्त हुआ तो कार्यालय का समय हो गय विमला नहाने का पानी ले आई। उसे विमला के हाथों का पकाया भोज आरम्भ से ही रुचिकर लगता है। आज तो वह जैसे उठना ही नहीं चाहत था। ... भोजन अत्यन्त स्वादिष्ट बना था। उसे कभी भी भोजन के विमला से कोई शिकायत नहीं रही।

...नय जाने को हुआ तो विमला उसे द्वार तक छोड़ने आई।

मनमोहन ने उसकी ओर गौर से देखा और सोचने लगा, विमला के इस र्पित चित्र में कौनसा रंग बेहतर है ? पत्नी का या माँ का ? वह देरतक उसकी ओर आत्म-विभोर सा निहारता रहा। सोचता रहा। फिर उसे लगा जैसे वे दोनों रंग आपस में काफी घुल मिल गए हैं और उनसे सेवा और कर्त्तव्य के मिले-जुले भाव का एक नया रंग उभरा है। नया प्रभाव दा हुआ है। और उसका मन एक पुलक से भर गया।

विमला बिल्लू के लिए दूध लेकर कमरे की ओर जाने लगी तो उसका ल्लू अचानक दरवाजे मे अटककर जोर से खिंच गया। उसके रोम-रोम में एक अजीब सी सरसराहट दौड़ गई। उसे याद आया—अभी कुछ दिन पूर्व ही इसी तरह उसका पल्लू खींचकर मनमोहन उसे अपनी बाहों में कस लिया करता था। वह देर तक मंत्र-मुग्ध सी खड़ी रही। उसकी स्मृति में मनमोहन का वह चित्र बार-बार उभरता रहा। उसकी शरारतें, उसका हंसना-हंसाना जैसे वह अपनी आखों के सामने देखती रही। आज उसके मन में अजीब सी हलचल मच गई। प्यार का सागर उमड़-पड़ा। उसे ध्यान ही नहीं रहा कि कब उसने अपने बाल संवार लिए। स्वयं शीशे के सामने खड़ी थी किन्तु अपने सामने बराबर उसने मनमोहन को ही देखा। आज उसने मनमोहन की पसन्द की वह साड़ी पहनी जिसे वह उसके लिये पिछले दिनों खास तौर से लाया था किन्तु उसने बिना देखे ही ट्रंक में रख दिया था।

मनमोहन कार्यालय से आया तो उसने विमला को अपनी बाट जोहते पाया। आज वह उसे अन्य दिनों की अपेक्षा अधिक आकर्षक दिख रही थी। उसने बहुत दिनों के बाद आज उसके चेहरे पर मुस्कुराहट की रेख देखी। आँखों में शोखी और चपलता के भाव देखे। उसने अनुभव किया जैसे उसकी शारीरिक और मानसिक दोनों थकानें मिट रही हैं, मिट रही हैं और····

दूसरे दिन विमला ने मनमोहन के साथ काफी रुचि के साथ बातचीत

की। बड़े मन से उसे खिलाया-पिलाया और कार्यालय जाने के लिए द्वार तक छोड़ने आई और कहा–सुनिये, विल्लू की तबीयत अब ठीक है। इस बार मैं पिताजी के यहां नहीं जाना चाहती। आप कहें तो हम लोग आज शाम को घूमने पार्क चलें। बेबी कई दिनों से सिनेमा देखने के लिए भी कह रही है।

मनमोहन उत्तर में केवल 'हां' कह कर मुस्कुरा दिया। कार्यालय में पहुँचा तो मन की प्रसन्नता चेहरे पर उभर आई। सभी से हंसी–खुशी के साथ बातचीत की। कार्यालय मे आज सात घंटे उसे बहुत बड़े लगे। टेबल से उठकर समय काटने के लिए दो तीन बार कैन्टीन भी हो आया।

समय हुआ तो सदा की भांति दिनेश ने पूछा–लाइब्रेरी चलोगे?

नहीं, मुझे समय पर घर पहुंचना है। इतना कहा और मनमोहन साइकिल पर बैठ गया।

दिनेश को लगा जैसे मनमोहन के चेहरे पर से निराशा और चिन्ता के सभी भाव काफूर हो गए हैं। उसकी मानसिक कुंठाओं का शमन हो गया है। उसकी सभी थकानें जैसे लोप की राह पा गई हैं। वह देखता रहा, मनमोहन के तेजी से चलते हुए पैर और उनसे खिचते हुए साइकिल के पहिए ...

असम्पृक्त

उसने देखा कि सामने की सीट पर बैठी युवती उसकी ओर देख कर मुस्करा रही है। उसने जाने क्या सोच कर अपना ध्यान 'काउन्टर' पर केन्द्रित कर लिया। पास खड़े बैरे को इशारे से बुलाया और कहा कि वह चाय के साथ टोस्ट लाए, उन्हें खूब सिका कर लाए। बैरा, जी हुजूर, कह कर चला गया। उसने अपना ध्यान फिर 'काउन्टर' पर कर लिया। 'काउन्टर' पर बैठे एक नुकीली मूंछों वाले आदमी में, जो हर तीसरे या चौथे क्षण छींक ले रहा था, उसे रुचि होने लगी। वह देर तक उसे देखता रहा। उसने सोचा कि वह रेस्तरां में पहले भी कई बार आ चुका है किन्तु उसने कभी इस आदमी को नहीं देखा। आखिर यह कौन है? मस्तिष्क के कोने में टंगे हुए इस प्रश्न पर वह आगे कुछ सोचता इससे पहले ही उसका हाथ ठंडे पानी से जा लगा। उसने देखा, पानी भी कांच की तरह साफ है। उस पानी के कोई एक दो घूंट लिए होंगे कि उसकी नजर एक युवक पर पड़ी जो अब रेस्तरां के अन्दर आगया था।

हलो संतोष!—युवक बोला।

जी, हलो!—वह जैसे चौंक सा गया। उसने पानी का गिलास एक ओर रख दिया।

कहो, कैसे हो? बहुत दिनों बाद मिले यार।

हां बहुत दिनों बाद—उसने रूखा सा उत्तर दे दिया। किंतु युवक शायद उसके उत्तर से सन्तुष्ट नहीं हुआ। अतः बात का सिलसिला शुरू करते हुए कहा—अरे यार, सुना है तुम पोस्ट ग्रेजुएट हो गये हो। अच्छा

लिया भाई, तुम लकी रहे। वरना हमें देखो, इन्टरमीडिएट करने के बाद ही चाकरी करनी पड़ी और अब तक एक ही जगह पर कलम घिस रहे हैं।

युवक ने यह इस तरह से कहा था कि उसे यह जानकर खुशी होगी कि वह अपने साथियों से कहीं अच्छी स्थिति में है। किंतु उसने देखा कि उसके चेहरे पर गर्व की कोई रेखा नहीं उभर रही है, बल्कि उसे देखने पर ऐसा एहसास हुआ जैसे वह अभी अभी कोई कड़वी सी चीज निगल चुका हो।

नहीं, ऐसी तो कोई बात नहीं। तुम तो मुझसे कहीं ठीक हो।—बहुत देर की चुप्पी के बाद संतोष ने कहा।

बैरा चाय ले आया। चाय का एक घूंट लेने के बाद ही आगन्तुक को कुछ घुटन सी अनुभव हुई। उसने बिजली के पंखे की ओर देखा। बन्द था। तुरन्त बैरे को पंखा चलाने के लिए कह दिया।

शायद तुम्हें यहाँ आए काफी देर हो गई—उसने संतोष से पूछा।

नहीं तो—उसने कुछ सम्भलते हुए कहा।

युवक ने देखा—जैसे संतोष के लिए उसकी उपस्थिति नहीं के बराबर है। वह उसकी बातों में दिलचस्पी नहीं दिखा रहा है। उसने चाय की चुस्की लेते हुए उसकी ओर देखा। उसकी नीली आँखों में लाल डोरे बड़े भले लग रहे थे। गर्मी में बैठे रहने से ललाट पर पसीने की जो बून्दें उभरने लगीं थी, हवा का स्पर्श पाकर वे मिट रही थीं।

संतोष ने उसकी ओर देखा और एक स्वस्थ मुस्कुराहट उसके संतुलित होंठों पर खेल गई। आगन्तुक ने सोचा, शायद वह अब तक किन्हीं अन्य विचारों में खोया हुआ था। अतः उसकी बातों में दिलचस्पी नहीं दिखा सका। उसने पुनः उत्साहित होकर पूछा—कहो भाई, अब तक कुँवारे ही हो या शादी-वादी? यार कॉलेज के अपने साथी तो सब धन्धे से लग गये। और जो लौंडिया थी न अपने साथ! अरे वही—नीला! वह यहाँ एक फर्म में 'रिशेप्सनिष्ट है। क्या गजब का कद है जालिम का!

कन यार, अब तो उसका सारा सौन्दर्य जैसे ···फिर वह कुछ मलते हुए बोला—शायद तुम बोर हो रहे हो। खैर, अपनी कहो। क्या ई धन्धा कर लिया ?

किसी ठीक-ठाक नौकरी की तलाश में हूँ—संतोष ने कहा और ना ध्यान टेबल की ओर कर लिया।

हाँ, सो तो चाहिए ही—उसने निहायत नसीहती लहजे में कहा।

किंतु संतोष इस बात को गम्भीरतापूर्वक लेने के बजाय मुस्कुरा या। उसकी बतीसी जगमगाने लगी।

चाय पीते समय संतोष बराबर टेबल पर लगे काले काँच की ओर खता रहा। इसी बीच उसे युवक ने बाँयी ओर बैठी एक सुन्दर और चुस्त वती की ओर देखने के लिए कुहनी मारी। उसपर उसकी कोई प्रतिक्रिया हीं हुई। उसने युवती को देखा और फिर उसी तरह काले काँच पर अपनी दृष्टि केन्द्रित करली।

बड़े बेमुरव्वत हो यार ! तुम्हें ऐसा सौन्दर्य भी आकर्षित नहीं करता—वह बोला।

हाँ। अच्छी 'पर्सनलिटी' है उसकी—संतोष ने इतना ही कहा।

रेस्तराँ के पारदर्शी काँच से उन्होंने देखा कि बाहर बारिश शुरू हो गई है। तभी एक युवक के साथ दो युवतियों ने रेस्तराँ में प्रवेश किया। युवतियाँ उनके करीब से गुजरी तो इत्र और पाउडर की भीनी-भीनी गंध उनकी साँसों से खेल गई।

वाह !—युवक ने उच्छ्वास भरकर कहा और संतोष की ओर देखने लगा। सन्तोष कमरे के दाँयें कोने में देख रहा था, जहाँ एक चूहा, इधर उधर घूमकर बाहर निकलने की कोशिश कर रहा था।

दोनों चाय पीकर बाहर निकल आये। बूँदें अभी भी गिर रही थीं।

चलो, बारिश तेज नहीं। अजमेरी गेट तक भीगते हुए चलेंगे—युवक बोला।

नहीं—सन्तोष ने कहा।

शायद तुम्हारा मूड आज कुछ ठीक नहीं।

नहीं, ऐसी तो कोई बात नहीं। यूँ ही नहीं चलना चाहता बारिश में।

तुम्हें कोई काम तो नहीं इस समय ?

नहीं, कोई काम नहीं।

आओ। सामने वाले थियटर में 'गहरा दाग' लगा हुआ है। भीगना नहीं चाहते हो तो वही देखें।

मैं फिल्में बहुत कम देखता हूँ—सन्तोष बोला।

लेकिन यह फिल्म तो अच्छी है। देखोगे तो पसन्द आयेगी। मैं तो इस फिल्म को दूसरी बार देखूँगा।

एक ही फिल्म को दूसरी बार ? सन्तोष ने आश्चर्य से कहा।

क्यों नहीं ? यह तो अपनी-अपनी पसन्द है। एक फिल्म पाँच बार भी देखी जा सकती है।

रेस्तरां के 'काउन्टर' पर सन्तोष ने पैसे दिये और दोनों थियटर की ओर बढ़ गये।

टिकट आगन्तुक ने खरीदे। हाल में घुसे तब तक शो शुरू नहीं हुआ था।

लेकिन सन्तोष तुमने मुझे यह नहीं बताया कि आजकल तुम कर क्या रहे हो ?—युवक ने बातचीत शुरू की।

तुम खुद भी ढेर सारी दूसरी बातें किये जा रहे हो—वह हँस दिया।

पिक्चर शुरू हो गई। सन्तोष चुप-चाप बैठा रहा। 'इन्टरवेल' होने तक उसने सन्तोष को कई बार नींद से जगाया। 'इन्टरवेल' होने के साथ ही वह उठ खड़ा हुआ। बाहर गया और फिर लौट कर नहीं आया। ❖

मन की भाषा

नरेन्द्र मैटिनी शो देखकर सिनेमा हाउस से निकला तो ठीक छह बजे थे। एक छोटी सी गली को पार किया और मेन-रोड पर आ गया। उसने सोचा, कुछ देर पैदल चला जाये। अचानक सामने आरही रेखा से भेंट हो गई।

हलो रेखा, कैसी हो?—नरेन्द्र ने पूछा।

ठीक हूँ। तुम कैसे हो?–उस दिन सेन्ट्रल लाईब्रेरी में देरतक तुम्हारी बाट देखती रही। क्यों नहीं आये वहाँ?—रेखा ने प्रश्न सूचक दृष्टि से नरेन्द्र की ओर देखा और अपने बैग को कंधे पर डालकर उसके साथ हो ली।

चलते हुए नरेन्द्र ने कहा—हाँ, मुझे खेद है। मैं वहाँ देर से पहुँचा। तब तक तुम वहाँ से जा चुकीं थीं।

अरे नहीं, जा कैसे सकती थी? खड़ी-खड़ी थक गई तो 'रिफरेंस रुम' में बैठ गई थी।

अच्छा!

तभी रेखा ने सड़क पर एक ओर खड़े होकर आवाज दी— टेक्सी!

टेक्सी उनके पास आकर रुक गई।

आओ नरेन्द्र! 'मारवे-बीच' चलेंगे–रेखा ने आग्रह किया।

नरेन्द्र टेक्सी में बैठने का आदी नहीं। फिर भी उसने उसका प्रतिवाद नहीं किया। वह बैठ गया।

टेक्सी 'मारवे बीच' आकर रुकी। सुहानी शाम। दूर सागर और

आकाश एक दूसरे के गले मिल रहे थे। सूर्यास्त का मद्धिमप्रकाश। नारियल के पेड़ों से टकराती हुई सुगंधित हवा। उसे लगा जैसे उसके रोम-रोम में स्फूर्ति भरने लगी है।

वहाँ बैठेंगे—रेखा ने हवा के झोंके से उड़ता हुआ अपना आँचल सम्भालते हुए सुनहरी रेत की ओर इशारा किया।

नरेन्द्र ने देखा-घने और काले बालों की लटें रेखा के गोरे चेहरे पर छाई आ रही हैं। वह बार-बार उन्हें हटाती है और वे हर बार एक नए अन्दाज से छा जाती हैं।

रेखा ने नरेन्द्र की ओर अपना हाथ बढ़ाया। दोनों एक दूसरे का हाथ पकड़कर रेत पर पहुँच गए।

रेखा—नरेन्द्र ने रेखा की बाँह पकड़कर उसे अपने करीब खींचा। रेखा ने अवश अपना सर उसकी गोद में लुढ़का दिया।

नरेन्द्र डीयर, आई लव यू वैरी मच। मेरा मन करता है कि हम हमेशा यूँ ही एक दूसरे के करीब रहें। हमारे दिलों की धड़कने सदा एक ही स्वर में प्रीत के गीत गुनगुनाती रहें—रेखा बोली।

काफी देर तक दोनों में प्यार की अनेक बातें होती रहीं। फिर दोनों चुप हो गए। रेखा को नरेन्द्र की गोद में नींद सी आने लगी थी। उठी और और कुछ देर सैर करने के बाद उसने कहा–चलो डीयर, अब चलें। काफी देर हो गई, कल शाम फिर मिलेंगे। 'इन्द्रलोक' में। ठीक छह बजे। वहाँ की कॉफी मुझे बहुत अच्छी लगती है। याद रहेगा न! ठीक छह बजे।

दोनों उठे और टेक्सी में बैठकर घर चले आए।

रास्ते भर नरेन्द्र सोचता रहा—क्या कारण है–रेखा के साथ उसके संबंध इतने सहज हैं। इतने सरल। रेखा ने अभी-अभी उसे कहा था –आई लव यू। किन्तु जैसे उसके शब्दों में एक साथ बनावटीपन था। एक अलगाव। संवेदना की रिक्तता। जैसे कहीं कोई गहराई नहीं।

वह स्वयं भी अपने संबंधों को रेखा के साथ अधिक गंभीरतापूर्वक ही ले पाता है। उसके साथ मिलना-जुलना, सब कुछ जैसे साधारण हो। खा को बहुतसी बातें कह देना और उसकी स्वीकारोक्ति। रेखा की ी उस स्वीकारोक्ति से कदाचित् ही तोष मिल पाता हो। यों रेखा से मलना उसे बुरा नहीं लगता। हाँ, उसकी अनुपस्थिति भी उसे विशेष हीं खलती।

कई बार वह बराबर कई दिनों तक उसके साथ रेस्तरां सिनेमा, पार्क और क्लब्स में घंटों बिताता है और कभी हफ्तों उससे मुलाकात नहीं हो पाती। इन दोनों स्थितियों में वह बिल्कुल एकसा अनुभव करता है। आखिर ऐसा क्यों है ? क्या सचमुच रेखा से उसे प्यार है या कि ···

नरेन्द्र पर पहुँचा तो वहाँ बिन्दू को अपनी प्रतीक्षा करते पाया। उसे आया देख बिन्दू के चेहरे पर मुस्कुराहट की एक रेखा सी दौड़ी और फिर वह गंभीर हो गई।

आई एम सोरी बिन्दू ! तुम्हें बहुत इन्तजार करना पड़ा होगा—नरेन्द्र ने कहा।

नहीं, मैं भी अभी ही आई थी–बिन्दू बोली और एक ओर पड़ी कुर्सी पर बैठ गई। नरेन्द्र भी बैठ गया। बिन्दू की भंगिमा आज कुछ अधिक गम्भीर थी। उसके मस्तिष्क पर चिंता की रेखाएं उभर रही थी।

क्यों बिन्दू, तुम्हारी तबीयत तो ठीक है ?—नरेन्द्र ने पूछा।

हाँ, तबीयत तो ठीक है लेकिन····– वह कहते-कहते रुक सी गई।

लेकिन क्या बिन्दू ? कहो न, क्या बात है—नरेन्द्र ने पूछकर उसकी बात के प्रति सहज औत्सुक्य प्रकट किया।

नरेन्द्र, आज तक सोचती रही। तुमसे कुछ कहूँ या न कहूँ। लेकिन ऐसा मालूम पड़ता है कि अब सब-कुछ कहना ही पड़ेगा। तुम तो जानते हो, हम दोनों का परिचय बहुत पुराना है। कॉलेज में एक साथ पढ़े। एक दूसरे के करीब रहे और को चाहा तुम्हारा प्यार चाहत बनकर मेरे मन

की गहराईयों में बस गया है। मैं तुम्हें चाहती हूँ। तुम मुझे। सच यह है कि किन्हीं परिस्थितियों के वश हम आज तक एक दूसरे के इतने करीब आकर भी एक न हो सके। लेकिन अब नहीं सहा जाता—बिन्दु ने जैसे बेबसी से कहा।

बिन्दु यह तुम क्या कह रही हो ? मुझे इस बात से कब इनकार है कि हम साथ रहें और एक दूसरे को चाहते हैं। मुझे बताओ वह कौन सी दीवार है जो हमारी चाहत के बीच खड़ी हो गई है ?—नरेन्द्र ने पूछा।

माता-पिता और समाज के बंधनों की दीवार। शायद यह दीवार हम दोनों को अलग करके ही छोड़ेगी। पिताजी आज ही मेरी शादी की बातचीत किसी दूसरे युवक से तय कर आये हैं। कहते हैं वह डाक्टर है। लेकिन नरेन्द्र, मैं तो तुम्हें प्यार करती हूँ। तुम्हें ही चाहती हूँ। फिर हल्के से स्वर में बिन्दु ने कहा—नरेन्द्र, क्या ऐसा नहीं हो सकता कि हम यहाँ से दूर, बहुत दूर जाकर अपना एक अलग संसार बसायें। अपनी अलग जिन्दगी जियें। मैं बहुतसा धन भी अपने साथ ले सकती हूँ।

नरेन्द्र सुनकर कुछ चौंक सा गया। बिन्दु एडवान्स लड़की है और उसके साथ एक अर्से से उसका मिलना-जुलना भी है। नरेन्द्र ने कभी उससे इस तरह के किसी प्रस्ताव की अपेक्षा नहीं की थी। उसका एकाएक यूं कहना उसे अप्रत्याशित लगा। बिन्दु का व्यवहार उसके साथ काफी मेल जोल का रहा है। वह उससे जब भी मिला है, घंटों बातचीत करने की इच्छा रही है। किन्तु कदाचित् यह सब एक निश्चित और साधारण सी स्थिति में ही हुआ।

वह कुछ देर तक चुप रहा। फिर कहने लगा—लेकिन बिन्दु, एक साथ रहने के लिए हमें शादी करनी पड़ेगी और शादी के विषय में तो मैंने आज तक कभी सोचा भी नहीं। फिर यह कैसे हो सकता है कि हम""हम दोनों ""कहते हुए उसका स्वर अटकने सा लगा था।

बिन्दु नरेन्द्र के मुख से यह सुनकर बहुत निराश हुई। वह बिना कुछ

है वहाँ से उठकर चली गई। नरेन्द्र को विश्वास था कि यह क्षणिक विष सा है जो कदाचित् बिन्दु के मन मे हमेशा नही बना रह सकता। ब भी बिन्दु उसे दुबारा मिलेगी उसी तरह के उन्मुक्तभाव से मिलेगी। से उनके बीच कभी कोई मनमुटाव ही नहीं हो। उसने बिन्दु के चले जाने ो विशेष चिन्ता नहीं की और अपने काम में लग गया।

●

आज सवेरे से ही नरेन्द्र के मस्तिष्क में बीना से मिलने की इच्छा घर रही है। वह दस बजे की गाड़ी से आ रही है। जबसे वह इन्टरव्यू देने बाहर गई है तब से ही वह मन के हर कोने मे एक अजीब सूनापन महसूस कर रहा है। उसके पास रहकर उसे एक विशेष तरह का तोष मिलता रहता है। वह जब भी बीना से मिलता है, उसे लगता है जैसे उसमें सम्पूर्णता आ गई है। कहीं कुछ अपूर्ण नहीं। कुछ शेष नहीं। कोई अलगाव, कोई असंप्रवत भाव नहीं। जब बीना उससे दूर रहती है तो उसके अन्तर में उससे मिलने की इच्छा हर क्षण बनी रहती है। जब वह एकान्त में होता है तो उसी का ख्याल उसे आ घेरता है। बीना ! मन तारों की हर झंकार मे बसा हुआ तोषप्रद नाम !

उसे अपने हाथ पर बंधी घड़ी की ओर देखा। साढ़े नौ बजे रहे थे। स्टेशन पहुँचने पर पता चला कि गाड़ी आधा घंटा लेट है। उसने सतोष की साँस ली और इधर-उधर टहलकर समय निकाला। कुछ देर मे गाड़ी आगई।

नरेन्द्र—यह बीना का स्वर था। वह पहचान गया।

कम्पार्टमैन्ट के दरवाजे पर बीना खड़ी मुस्कुरा रही थी। उसके चेहरे पर थकान की रेखाएं दृष्टिगोचर हो रही थीं। बीना का व्यक्तित्व सीधा-सादा है। वह न अधिक सुन्दर है और न कुरूप। मैला रंग। लम्बे बाल। कन्दर की गहराई लिए हुए बड़ी-बड़ी आँखें। यात्रा के पश्चात दरेत बरसों

में वीना की छवि उसे भाती रही। नरेन्द्र ने सूटकेस थामा और दोनों प्लेटफार्म से निकल पड़े।

कैसा रहा इन्टरव्यू ? सिलेक्शन हो जायेगा ?—वीना के उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही नरेन्द्र आगे बोला—लेकिन वीना क्या यह ठीक होगा ?

मैं क्या जानूं ?

तो फिर इन्टरव्यू देने क्यों गई थीं ?—पूछा नरेन्द्र ने।

बस, वैसे ही—वीना ने सहज मुस्कान के साथ उत्तर दिया।

नरेन्द्र ने आगे कुछ नहीं पूछा किन्तु वह मन में सोचने लगा—वीना का सिलेक्शन होने के पश्चात वह लेक्चरार बनकर दूसरे शहर चली जायेगी। उससे दूर। यह स्थिति उसके लिए असह्य होगी। ऐसी अवस्था में या तो वह उसे शहर छोड़ना होगा या फिर वीना को। लेकिन वीना को वह यह सब कुछ कैसे समझाये ? उसके सामने वह कुछ भी तो नहीं कह पाता है। उसे लगता है वह वीना से कभी कुछ नहीं कह पायेगा। उसके सामने वह बिन्दू और रेखा की तरह साफ तौर से प्यार का इकरार या इन्कार कभी नहीं कर सकेगा। अपने मन की भाषा के अतिरिक्त उसके पास वीना को कहने के लिए किसी दूसरी भाषा के शब्द नहीं और कदाचित् सिर्फ वीना ही ने उन्हें पढ़ा है और किसी ने नहीं।

और वीना—कभी उसने रेखा और बिन्दू के समान नरेन्द्र को अपना प्यार स्वीकार करने के लिए मजबूर नहीं किया। बस, एक पीर है जो उसके अन्तर में पैठ गई है। एक दर्द है जो नरेन्द्र के नाम के साथ उठता है और मन की गहराईयों तक धँसता चला जाता है। उसमें नरेन्द्र के सामने कुछ भी कहने का साहस नहीं। कभी-कभी नरेन्द्र के सामने रहते वह ऐसा अनुभव करती है जैसे उसकी जुबान पर ताले पड़ गये हैं। वह ऐसा सोचती है जैसे नरेन्द्र सब कुछ जानता है। बस एक विश्वास है जिसके सहारे वह जीना सीख रही है।.....

वीना-नरेन्द्र ने मन में साहस बटोरकर कहा-क्या तुम मुझपर विश्वास करती हो ?

वीना को नरेन्द्र का यह प्रश्न अजीब सा लगा । उसने सोचा-आखिर नरेन्द्र आज उससे ऐसा प्रश्न क्यों पूछ रहा है ? क्या उसे इस बात का एहसास नहीं । आखिर वह उसके मुंह से ऐसा क्यों कहलवाना चाहता है ? कुछ क्षण रुककर वह बोली-अगर मैं कहूँ नहीं, तो....

तो मैं कहूँगा कि तुमने मुझे समझने में भूल की है— नरेन्द्र ने कहा ।

और अगर मैं कहूँ कि मैने तुम्हें समझने में भूल नहीं की तो ?—वीना बोली ।

तो वीना मेरे साथ चलो ! छोड़ दो वह घर जिसमें तुम अकेली रहती हो । अब से हम दोनों एक साथ रहेंगे ।

वीना ने मुंह से कुछ नहीं कहा । उसकी पलकें झुक गईं और उसके पाँव के नरेन्द्र के पाँवों के पीछे हो लिए ।

❖

एक शिल्पहीन कहानी

सुरेखा को अपनी माँ सभी तरह से प्रिय है। किन्तु माँ की सिर्फ एक बात उसे खलती है—वह उसका स्वतन्त्र रूप से घूमना-फिरना पसन्द नहीं करती। डैडी बिजनस में इस कदर बिझी रहते हैं कि उन्हें महीनों सुरेखा से मिलने की फुर्सत नहीं मिलती। सुरेखा को देर से सोने की आदत है। पिताजी और भी देर से घर आते हैं। महीने में कोई बीस दिन बाहर रहना पड़ता है उन्हें। जब यहाँ होते हैं तो सुरेखा के जागने से पहले ही नाश्ता करके चले जाते हैं। पिताजी से मुलाकात होती है वह नहीं के बराबर। उस पर अधिकतर नियन्त्रण माँ का ही है। किन्तु अब यह नियन्त्रण उसे अक्सर नागवार गुजरता है। आखिर अब वह कोई बच्ची नहीं जो बात-बात के लिए माँ से आज्ञा लेती फिरे। उसने युनिवर्सिटी में पढ़कर एम ए. किया है। मैनर्स सीखे हैं। वह कार ड्राइव कर सकती है, क्लब्स में जाकर खेल-कूद सकती है। घुड़सवारी करना और तैरना भी जानती है। अच्छे बुरे की पहचान कर सकती है। उसके पापा ने तो उसकी स्मार्टनेस देख कर अपनी एक रबर उत्पादक कम्पनी का सारा कार्यभार उसे ही सौंप देने की बात कही थी। माँ ने मना कर दिया। सुरेखा को काफी झल्लाहट हुई। आखिर माँ मुझे क्या समझती है? वह जमाने की रफ्तार से परिचित नहीं। उसे पता नहीं कि आजकल की औरतें किसी भी काम में मर्दों से कम नहीं। अगर वह सार्वजनिक क्षेत्र में मर्दों के समान काम नहीं कर सक[illegible] उसे इतना पढ़ाया लिखाया क्यों? जब उसे जीवनयापन [illegible] क सुविधायें उपलब्ध हैं तो क्यों नहीं वह इनका उपयोग

करे ? सुरेखा का अपना ख्याल है—जिन्दगी चार दिन की है उसे जहाँ तक हो सके हँस खेलकर गुजारना चाहिए। और फिर वह तो ऐसा आराम से कर सकती है। क्या नहीं उसके पास अच्छा खाना बनता है, मोटर कार है, नौकर-चाकर, धन-दौलत, गहने-कपड़े, सब कुछ है। किन्तु माँ का नियन्त्रण—कहीं अकेले बाहर जाओ तो भी गड़बड़ी। जब वह खुद कार चलाना जानती है तो फिर ड्राइवर को साथ घसीटने की क्या जरूरत है ? कहीं गोठ या पिकनिक मे भी अपनी खास सहेलियों के साथ ही जाओ। आखिर किसी बात की हद होती है। उस दिन की बात को ही लो। 'रिवर बीच' से वापस आते समय सुरेखा अपने मित्र राजेश को साथ ले आई तो माँ ने ऐसा मुँह चढा लिया जैसे कोई पाप कर दिया हो उसने। बेचारे ने नमस्कार किया तो उसका भी ढंग से जवाब नहीं दिया। चाय भी खुद नहीं पिलवाई। महाराजिन को भेज दिया। रात को देर तक रूठी रही। राजेश के साथ फिल्म देखने का कार्यक्रम भी इसीलिए स्थगित कर देना पड़ा।

शायद माँ यह नहीं जानती कि पढ लिख लेने के बाद सुरेखा कितने एडवान्स खयालों वाली लडकी हो गई है। अब वह कोई अनपढ गुडिया नहीं है कि उस पर किसी बात का असर ही न हो। जिन्दगी की ऊँच-नीच को वह ठीक तरह से समझती है। एकाएक कोई उसे छल नहीं सकता। प्रेम, प्यार और इश्क की बनावटी बातों से बहीं ऊपर उठकर वह सोचती है। उसका थिंकिंग इटलेक्चुअल थिंकिंग है। विवाह के सम्बंध में भी उसकी अपनी मान्यता है। अपनी धारणा है। पुरुष महिलाओं को अपनी बांदी समझते हैं। कोई भी आदमी थोडे भी दम की जगह हुआ कि अपनी पत्नी पर रौब गालिब करने लगता है। आज की स्त्री हर क्षेत्र में पुरुष के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर चल सकती है। वह उसकी दासी नहीं। सुरेखा स्वयं भी किसी ऐरे-गैरे आदमी से अपना दामन नहीं बांधेगी। वह उसी आदमी से विवाह करेगी जो उसके जजबातों की एव

गुलामी कर सकेगा। वह दासी बनकर किसी के साथ नहीं बंध सकती
उसने सोचा।

सुरेखा जिस रफ्तार से अपना जीवन गुजार रही है—उसका स्व
है कि जिन्दगी की अगर रफ्तार भी बढ़ी है। उसकी उम्र कोई बाईस
की है। सभी तरह के फैशन उसे प्रिय हैं। उसका रंग गोरा है। कद
आकर्षक है। सभी फैशन उसे बड़ी फबती हैं। अंग-प्रत्यंग का उ
इतना सुन्दर है कि कभी-कभी तो शीशे के सामने खड़ी होकर स्वयं
चूमने की इच्छा होती है उसकी।

निकट भविष्य में ही उसका विचार शादी करने का नहीं है कि
माँ को न जाने क्या जल्दी पड़ी है, उसने बिना पूछ ताछ किये ही वहाँ
में बादे चिट्ठी लिख देती है। अपने शहर में भी उसके लिए लड़के
तलाश शुरू करदी गई है। जो रिश्तेदार, जो पड़ोसी मिलने आता है—
एक ही जिक्र करती है—अब तो सुरेखा के हाथ पीले कर देने की फि
लगी है। बहुत सी जगह बात-चीत चल रही है। भगवान ने चाह
किसी अच्छे घर ही जायेगी।

उसे माँ की इन सब बातों से चिढ़ है। आज सबेरे ही माँ ने
वजह से उसका मूड खराब कर दिया। उसकी सहेलियाँ और दोस्त
कितने चाव से 'मनोहर गार्डन्स' में पिकनिक पर बुलाने आये थे। वह
भी 'मनोहर गार्डन्स' में पिकनिक करने को एक अर्से से योजना बना
थी। कितनी मनोरम जगह है वह। बस्ती से कोई चालीस मील दूर-
ही मनमोहक एकान्त। वहाँ न शहर की सी हलचल है और न थकां
जितनी देर रहो ऐसा लगता है जैसे स्वर्ग के किसी भाग में विचरण
आगए हों। पहले भी दो-तीन बार सुरेखा वहाँ हो आई है। कितने
बाद प्रोग्राम बना है इस बार। पर माँ है कि अपनी जिद पकड़े हुए है
देखने के लिए ये आने वाला है, वो आने वाला है। और आज माँ के
तो ये मजिस्ट्रेट साहब आ गये हैं तो उठने का नाम नहीं लेते। बात

मुद पिला आई है। बिस्कुट और मिठाई देखते-देखते उड़ा गये। बात में से बात ऐसी निकालते हैं जैसे वापस घर जाने से कोई वास्ता ही नहीं। सुरेखा बहाना करके वहाँ से उठ आई है। ड्राइंग रूम में आकर वह यही सब कुछ सोच रही है।

सुबह अपनी सहेलियों द्वारा 'मनोहर गार्डन्स' चलने का आग्रह अब भी उसके मस्तिष्क में चक्कर लगा रहा है। उसने घड़ी देखी। उसने सोचा यदि वह अब भी अपनी कार लेकर रवाना होती है तो भी एक घण्टे में आराम से 'मनोहर गार्डन्स' पहुँच सकती है। उसने इरादा किया और माँ को सूचित करके कि वह पिकनिक में जा रही है, कार लेकर रवाना हो गई। रास्ते में बाजार से कुछ फल और मिठाइयाँ खरीदीं और 'मनोहर गार्डन्स' की ओर चल दी।

लगभग सोलह मील पहुँचने के बाद एक निर्जन और एकान्त जगह में उसकी कार का एंजिन एकाएक ठंडा हो गया और गाड़ी धीमी होकर अपने आप रुक गई। गाड़ी में कोई खराबी होगई थी। सुरेखा ने नीचे उतरकर देखा। मोटर के कवर को खोला। एंजिन से हल्का सा धुंआ निकल रहा था। कुछ देर में धुंआ हवा में विलीन हो गया। उसके कुछ भी समझ में नहीं आया। उसने झल्लाकर कवर बन्द कर दिया। वह किसी मददगार की प्रतीक्षा करने लगी। इसी बीच उसने बेहद प्यास का अनुभव किया। इधर-उधर नजर दौड़ाई। थोड़ी दूर पर उसे दो एक झोंपड़ियाँ नजर आईं। वहाँ पहुँच गई। एक काली और मरी सी ग्रामीण युवती ने उसे कुल्हड़ से कुएं का पानी पिलाया। सुरेखा को यह सब देखकर घिन आने लगी। जैसे-तैसे पानी पीकर वह मोटर के करीब आई।

प्रतीक्षा करते-करते शाम हो चली पर कोई उधर नहीं आया। एक दो कारें गुजरीं जिनमें ढेर सारे लोग भरे थे। सुरेखा ने सोचा कि उसे वीरान रास्ते में अकेले खड़ा देखकर वे अवश्य रुक जायेंगे। पर वो तेजी से निकल गये।

के पास बैठा रहा। उस ओर से कोई नहीं आया। सुरेखा ने यह समझ लिया कि उसके मित्रों ने शायद अपने-अपने घर फोन करके सूचित कर दिया है और रात को वे वहीं रुक गए हैं। वह हताश होकर उस आदमी के साथ मोटर में से अपनी टोकरी उठाकर उसके घर की ओर पैदल रवाना हो गई।

रास्ते में उस आदमी ने बताया कि उसका नाम किसना है और वह उसके पिताजी का बड़ा एहसानमन्द है। उन्होने उसे आते ही अपनी मोटर फैक्ट्री में नौकर रख लिया था। उसने यह भी बताया कि हर शनिवार की रात तक वह शहर से साइकिल पर चढ़कर अपने गाँव आ जाता है और सोमवार की सुबह जल्दी उठकर शहर पहुँच जाता है। उसके दो बच्चे हैं, एक बच्ची है। उसकी बहू अनपढ़ और गंवार है। पर घर गृहस्थी की देख-भाल बड़े अच्छे ढंग से करती है। उस गांव में उसका अपना छोटा सा पक्का मकान है पर वह अपने परिवार का भरण-पोषण बड़ी कठिनाई से कर रहा है।

किसना के घर पहुँचते-पहुँचते सुरेखा पूरी तरह से थक चुकी थी। उसने देखा-किसना की प्रतीक्षा में उसकी बहू एक लालटेन जलाये हुए खटिया के करीब बैठी है। शायद अभी-अभी उसकी आंख लगी है। उन्हे आया देख वह एकाएक जागकर खडी हो गई और लम्बा सा घूंघट काढ़-कर बोली—बहुत देर करदी आज ?

किसना ने सुरेखा से बैठने का आग्रह किया। खटिया पर धुली हुई शतरंज बिछी थी। सुरेखा उस पर बैठ गई।

किसना की बहू ने सुरेखा की सब तरह से आवभगत की। हाथ पाँव धोने के लिए एक बाल्टी में पानी उपस्थित किया। फिर गर्म-गर्म परांठे बनाये। पर वह नही खा सकी। उसने अपनी टोकरी में से केवल दो एक फल खाये।

सुरेखा के सोने का प्रबन्ध छत पर खुली हवा में खटिया बिछाकर

कर दिया गया । उसे यह सब बिल्कुल अजीब लग रहा था । अन्धेरी रात और सन्नाटा । वह इसकी बिल्कुल आदी नहीं रही है । उसे नींद नहीं आई । कभी वह मन ही मन मां पर गुस्सा कर रही थी तो कभी खुद अपने आप पर झल्ला उठती । पर मजबूर थी । आज की रात उसे इसी सुनसान गाँव में गुजारनी थी । उसने सोने की चेष्टा की, पर नींद नहीं आई । रात को देर तक वह छत पर टहलती रही । उसने देखा-आँगन में किसना की बहू उसे बड़े चाव से खाना खिला रही है । कभी वह उसे रोटी और सब्जी की मनवार करती है । कभी उसके लिए खास तौर से पकाई गई रावड़ी की । आंगन में हवा ठीक तरह से नहीं पहुँचती । अतः साथ ही उसे पंखा भी झल रही है । भोजन कर चुकने के बाद उसने उसके हाथ धुलाये और ठंडा पानी पिलाया । फिर स्वयं खाना खाकर खटिया में सो रहे किसना के पांव दबाने चली गई ।

सुरेखा ने फिर कोशिश की ।पर उसेनींद नहीं आई । रात को देर गए फिर उसका मन उचटने लगा । वह खड़ी होकर छत पर टहलने लगी । उसने देखा—किसना और उसके बच्चे सो रहे हैं । किसना के पाँवों के पास ही उसकी वहू भी बैठी-बैठी ही सो गई है । शायद उसके पांव दबाते हुए उसे नींद आ गई है ।

सुरेखा लेट गई । सुबह होते-होते घट्टी के घरं घरं करने की आवाज सुरेखा के कानों में पड़ी और वह जाग गई । नीचे आकर उसने देखा छोटे कमरे में किसना की बहू घट्टी से आटा पीस रही है । वह उसके करीब जाकर बैठ गई । रात को तो वह उसे ठीक तरह से देख भी नहीं पाई थी । सुरेखा ने किसना की बहू का चेहरा देखा तो मोहित हो गई । कितना सुन्दर रूप । कितना अच्छा नाक-नक्श । कजरारी आंखें । मतवाले होंठ । भरे-भरे गाल और आकर्षक जुल्फें । पहनने को सिर्फ कानों में दो बालियां । नाक में तिनसा और गले में मंगलसूत्र, पर लगता है जैसे खूब शृंगार किया हो, और तभी उसे ख्याल आया किसना का । उसने सोचा कितना

विरोधाभास है इन दोनों में। किसना किसना रफ और उजड्ड लगता है और उसकी पत्नी सौन्दर्य की देवी है। उस पर यह उसकी इतनी सेवा करती है। भला क्या सुखी होगी यह उसके साथ।

सुरेखा यही कुछ सोच रही थी कि उसने देखा किसना की बहू उसकी तरफ देख कर मुस्कुरा रही है। उसे उसका मुस्कुराना बहुत भला लगा। वह स्वयं हंस दी।

कहो रानी जी, रात को नींद तो अच्छी तरह से आई ?—किसना की बहू ने पूछा।

हाँ सो ही ली थी।

हां, भला महलों में रहने वाली हमारी रानी जी को इस सुनसान गाँव में चैन की नींद कैसे आएगी ?

नहीं, ऐसी कोई बात नहीं। लेकिन ···लेकिन सोचती हूँ तुम लोग यहाँ कैसे रह लेते हो ?—सुरेखा ने पूछा।

आदत जो पड़ गई है—किसना की बहू ने हंसकर जवाब दिया—सुरेखा रानी, अगर गिरस्ती में सुख हो तो गाँव और शहर, महल और झोंपड़ी से कोई फरक नहीं पड़ता। मन में शांति नहीं हो तो भला इनको क्या चाटना है ?

ठीक कहती हो—सुरेखा ने देखा किसना की बहू के हाथों में चक्की पीसते-पीसते छाले से उभर आये हैं।

बहुत मेहनत करनी पड़ती है तुम्हें ?—उसने पूछा।

मेहनत ! एलो रानी, अगर घर का काम-काज करने को कोई औरत मेहनत कहे तो हो गया कल्याण। फिर भला क्या घर की बहू तमाशा बनने को होती है ?

सुरेखा निरुत्तर हो गई। तभी किसना के दोनों बालक और पुत्री वहीं दौड़े हुए आ गए। आते ही बोले—माँ, माँ हमें भूख लगी है। कलेवा दो।

अरे दिन हुआ नहीं और लगे कलेवा माँगने। अभी ठहरो आटा पीस कर सबको दूँगी–बालक चले गए।

सन्तानें अपनी माँ ही की भाँति पर्याप्त सुन्दर थीं। सुरेखा से रहा नहीं गया। उसने पूछ ही लिया–तुम्हारी उम्र तो कोई खास नहीं लगती फिर ये बच्चे····?

मेरे ही हैं।

कितना अर्सा हुआ तुम्हारी शादी को ?

छह वर्ष। कहते हुए किसना की बहू ने अपना पल्लू अपने बढ़े पेट पर डाल लिया।

सुरेखा समझ गई। शायद चौथा मेहमान भी आने वाला है।

छह वर्ष में चार बच्चे ?–सुरेखा के मुँह से अनायास ही नि गया।

किसना की बहू शरमा गई। कुछ ही क्षण बाद बोली–सुरेखा बच्चों से ही घर-गृहस्थी का सुख है। जब तक घर में खेलने वाले दो बच्चे नहीं होते तब तक क्या गृहस्थी बसती है ? आदमी और और प्यार भी तभी बढ़ता है जब बच्चे होते हैं।

दिन भर गृहस्थी के चक्कर से ऊब नहीं जाती हो ?–सुरेखा ने पूछा।

एक बार गृहस्थी बनकर तो देखो सुरेखा रानी। फिर प्या तकरार की इस दुनियाँ को छोड़ने को जी नहीं करेगा—किसना बाँए हाथ से चक्की में गेहूँ डालती जा रही थी और दाँयें हाथ से चला रही थी।

कभी मारपीट भी करता होगा तुम्हारा आदमी ?

तन-मन से प्यार भी तो वही करते हैं। किसना की बहू दिया और चक्की को रोककर बोली–आओ, गरीब घर का नाश्ता क

दोनों वहाँ से उठ आईं। सुरेखा ने सोचा–यह औरत अना

अपनी गृहस्थी को कितने अच्छे ढंग से चला रही है। इसके विचार कित
सुलझे हुए हैं। *इसका मन गंगा की तरह पवित्र लगता है। कहीं कोई मै*
कोई जाल या कोई कुंठा नहीं है। किसना जैसे आदमी के पास रहकर भ
अपने आपको धन्य समझती है। क्या सचमुच औरत को सच्चा सुख गृहस्
में ही मिल सकता है? उसके मस्तिष्क में एक प्रश्न चिन्ह बनने लगा
आज पहली बार उसे लगा जैसे इतना पढ़-लिख लेने के बाद भी वह बिल्कु
खाली है। बिल्कुल रिक्त। उसमें किसना की बहू जैसी अनपढ़ से भी त
करने की शक्ति नहीं। साहस नहीं है। किसना की बहू के मुकाबले दा
और गृहस्थी के विषय में उसकी धारणाएँ कितनी थोथी और खोखली है
वह देर तक यही कुछ सोचती रही।

सुरेखा ने पराठों का नाश्ता किया और चाय पी। नौ बजे तक रा
जस शहर से आ गया। कुछ ही देर में उसने सुरेखा की कार को ठीक-ठा
कर दिया। सुरेखा अब 'मनोहर गार्डन्स' जाने की बजाय अपने घर
और रवाना हो गई। रास्ते की ताजा हवा उसके तन-बदन में फुरफु
भरने लगी। इस समय उसे न तो गार्डन्स न पहुँचने का गम सता रहा
और न कठिनाई से बिताई गई रात का मलाल था। वह सिर्फ किसना
बहू के विषय में सोच रही थी। उसे किसना की बहू की एक एक बात य
आ रही थी—घर का काम-काज करने को कोई औरत मेहनत कहे''' अ
गृहस्थी में सुख हो तो महल और झोंपड़ी एक समान है''''बच्चों से
गृहस्थी का सुख है'' तन मन से प्यार भी तो वही करते हैं''''आदि-आदि
उसकी मोटरकार धीरे धीरे घर की ओर बढ़ रही थी। ❖

एक मुस्कुराहट कल की

अभी कल की ही बात है कितनी चहल-पहल, कितना हल्ला-गुल्ला मचा हुआ घर के हर कोने में। खुशी में मगन सभी लोग इधर-उधर दौड़-भाग कर रहे थे। छोटे-बड़े सब व्यस्त होकर यहाँ-वहाँ घूम रहे थे। एक ओर ढोलक और घुंघरू की आवाज पर गीत गाये जा रहे थे तो दूसरी ओर शहनाई पर आकर्षक धुनें बजाई जा रही थी। घर-बाहर, नाते-रिश्ते के लोग सभी उपस्थित थे। मामा-मामी, चाचा-चाची, बुआ नानी और सब के बाल-बच्चे। घर में अच्छी खासी भीड़ थी और अब कोई नहीं। सब अपने अपने घर चले गए। जैसे ही दीदी डोली में बैठी बारात के प्रस्थान को बाद सभी लोग वापस जाने की रट लगाने लगे। रात तक लगभग आधे लोग चले गये। दूसरा दिन हुआ कि भीड़ गायब। पिताजी ने सभी से आग्रह किया था कि कुछ दिन रुकें और शहर को देखें। किन्तु रुका कोई नहीं। सभी ऐसे भागे जैसे कोई हमला सर से उतार भागे हों। हां! बेटी का ब्याह हमला ही तो है। बाप भी यों तो अपनी लाड़ली बेटी से बिछुड़ने पर आँसू बहाता है। किन्तु उसके अन्दर के किसी कोने में सन्तोष की एक लहर भी दौड़ रही होती है। जैसे कन्धों से कोई भारी बोझा उतर गया हो। फिर दूसरों का तो कहना ही क्या।

एक तरह से तो अच्छा ही हुआ कि सब लोग इतनी जल्दी चले गये। क्योंकि उनके रहते हुए जिस रफ्तार से रुपया खर्च हो रहा था, वह बहुत भारी पड़ रहा था। पिताजी पर वैसे ही दीदी के ब्याह का काफी कर्ज हो गया। कर्ज के इस बोझ से उबर न पाने का दुष्परिणाम क्या होगा? कहा

नहीं जा सकता। पर खैर। शायद यह संतोष उन्हें बल देता रहेगा कि अब उन्हें लड़की की शादी की चिन्ता नहीं रहेगी।

पिताजी को दीदी के लिए वर तलाश करने में बड़ी कठिनाई हुई थी। बिरादरी में लड़कियों की तो कमी नहीं, किन्तु लड़के बहुत कम मिल रहे थे। फिर दीदी भी सयानी हो गई थी। पिताजी कहा करते हैं कि आज-कल ज़माने का कुछ भरोसा नहीं। इससे पहले कि लड़कियाँ खुद अपने वर तलाश करें, माँ बाप को उनके लिए दूल्हे की खोज कर देनी चाहिये और यही दीदी के साथ हुआ। किन्तु मैं इस बात को नहीं मानता। पर मेरे न मानने से होता भी क्या है? कौन सुनता है मेरी घर में। सबसे छोटा जो ठहरा।

जब से दीदी की शादी की बात चली थी। तीन या चार लड़के दीदी को देखने आचुके थे। पर कहीं शादी का संयोग नहीं बैठा था। एक ने कहा था—लड़की बी. ए. तक पढ़ी होनी चाहिये। जब कि दीदी ने इसी वर्ष 'इन्टर' किया था। दूसरे महाशय खूब सारा दहेज माँगते थे। एक जगह संतोष चाचा ने बात तय की थी। किन्तु वे दो साल ठहरने को कह रहे थे। पिताजी को यह बात जंची नहीं।

इस बार मौसी ने बात पक्की की थी। कहा था—लड़का सुशील और व्यवहारकुशल है। एक प्राईवेट फर्म में चार सौ रुपये माहवार की नौकरी पर लगा हुआ है। और सबसे बड़ी बात यह कि घराना अच्छा है, और उन्हीं के शहर में है। अतः दीदी की क्षेम-कुशल भी मालूम होती रहेगी।

लड़के को बुलाया गया। खूब स्वागत आव-भगत की गई। मैंने भी होने वाले जीजाजी को देखा। बड़े भोले लगे। दीदी को भी उन्होंने पसन्द कर लिया। पिताजी ने इस बात को स्वीकार कर लिया कि शादी ब्याह के मामले में पुरुषों की अपेक्षा औरतें अधिक दक्ष होती हैं। क्योंकि जिस बात के लिए वे एक अर्से से चिन्तित थे, मौसी ने उसे मिनटों में निपटा दिया था।

सगाई के कोई सवा महीने बाद शादी हो गई। इसी बीच दीदी में बहुत बड़ा परिवर्तन आ गया। उसकी चाल-ढाल, बोल-चाल, व्यवहार में एक अजीब शालीनता पनपने लगी थी। चेहरे पर बहुत से गम्भीर भाव उभरने लगे थे। सलवार कुर्त की जगह अब दीदी साड़ी पहनने लगी थी। बाहर आना जाना लगभग बन्द कर दिया था। घर में इधर-उधर आते-जाते या सीढ़ियाँ उतरते-चढ़ते गुनगुनाना छोड़ दिया था। दिन भर गुम-सुम जाने क्या सोचती रहती थी।

मैं कभी-कभी दीदी को यूँ ही छेड़ दिया करता—दीदी, तुम यहाँ बहुत कमजोर हो गई हो। ससुराल का माल खाओगी तो टुनटुन हो जाओगी।

धत्! तू जायगा घर जमाई बनकर ससुराल। कोई ऐसी मिलेगी कि सब शरारत भूल जायेगा–कहते हुए एक स्निग्ध मुस्कान दीदी के चेहरे पर दौड़ जाती। मन की गहराइयों से उभरकर निकली हुई मुस्कान, जिसमें दीदी के बचपन की सभी अठखेलियां मुखर हो उठती। उसी मुस्कान में खोकर मैंने सोचा था कि क्या एक दिन दीदी की इस मुस्कान को हम सदा के लिए खो देंगे? अब के बाद भी बहुत बार दीदी हँसेगी। मुस्कुरायेगी। किन्तु क्या उसके होंठो पर ठीक ऐसी मुस्कान खेल सकेगी जो आज है और कल थी?.........

उसके बाद हर दिन के गुजर जाने पर हमें ऐसा महसूस हुआ कि दीदी हमसे बिछुड़कर एक नई मन्जिल की ओर बढ़ रही है। अपना नया जीवन जीने। अब उसे अपनी जिन्दगी एकदम नए सिरे से बितानी होगी।

वह दिन भी आ गया जब सचमुच दीदी हम से बिछुड़ गई। किन्तु इससे पहले घर मे इतना शोर-शरा हुआ कि उसमें हम सब यह भूल गए कि यह बाजा-गाजा दीदी को घर से विदा करने के लिए हो रहा है। उसकी जुदाई हमें बिल्कुल नही भायी। परन्तु कर भी क्या सकते थे। दीदी को जाना था। चली गई।

जिस रात ब्याह के फेरे होने थे, घर के सभी लोग जागते रहे। इसी बीच एक बार जैसे रंग में भंग पड़ गया। लड़के वालों की कोई दूर के रिश्ते की बूआ थीं। दहेज का सामान देखा तो नाक-भौं सिकोड़कर एक ओर जा कुछ गुसर-पुसर करने लगी। देखा-देखी बारात में आए दूसरे लोग और औरतें भी यही चर्चा ले बैठीं। किसी ने कहा—सुना तो था लड़की वाले अच्छा दहेज देंगे। पर वहाँ तो रेडियो भी नहीं जुटा।

कोई फुसफुसाया—अजी लेना देना क्या है? बहू को ले जाओ और जय रामजी की। साहबजादे को एक अस्सी रुपल्ली की घड़ी क्या दे दी बस, दहेज हो गया।

कोई कह रहा था—अजी मुझे तो कन्यादान में भी कुछ आता-जाता दिखाई नहीं देता।

ये सारी बातें पिताजी के कानों तक भी पहुँच गईं थीं। पर वे लड़की का बाप होने के नाते बेबस और लाचार इन्सान की तरह अपने स्वाभिमान पर चोटें सहते रहे। यह बात घर के किसी भी आदमी से छिपी हुई नहीं थी कि यदि पिताजी की जरा भी सामर्थ्य होती तो वे रेडियो तो क्या, वे लोग जो कुछ भी माँगते उनके सामने रख देते। किन्तु वे ऐसा नहीं कर सके। सतोष की बात यह थी कि उन्हें अपने समधी के मुँह से ऐसी कोई बात सुनने को नहीं मिली। बिना किसी विघ्न के, फेरे हो गये।

दीदी डोली में बैठने के पहले माँ की गोद में सर रखकर देर तक सिसकती रही। मुझ से यह देखा नहीं गया। बरबस आँखों में आँसू छलक आये। वह—भैया! कहकर मुझ से लिपट गई। उसकी आँखों में जाने कितने आँसू थे कि खत्म ही नहीं होते थे। उसका दामन आँसुओं से भीग चुका था। एक ओर उदास मन पिताजी खड़े अपनी आँखें पोंछ रहे थे।

सारी चहल-पहल उदासी के एक गहरे खाद में डूबती जा रही थी। खुशी के नगमे आँसुओं में भीगकर थम गये थे। लड़कियों की जिन्दगी भी क्या जिन्दगी होती है। उन्हें पाल-पोसकर बड़ा करो और एक अजनबी के

हाथ में उसका हाथ सदा-सदा के लिए दे दो। दीदी भी एक ऐसे ही आदमी के साथ जा रही थी जो उसके लिए नया होते हुए भी सब कुछ था। हम पुराने होकर भी कुछ नहीं रहे थे। वह आंगन जहां उसका बचपन खेला था, यौवन अंगड़ाइयां ले रहा था, आज उसके लिए पराया था। एक ऐसे घर को जिसे उसने आज से पहले कभी नहीं देखा। जहां कभी कदम भी नहीं रक्खा उसे वह सदा के लिए अपनाने जा रही थी।

डोली में बैठकर दीदी चली गई। दीदी पराई हो गई। घर सूना हो गया। एक मुस्कुराहट सो गई। ऐसी मुस्कुराहट जो कल थी और आज नहीं है। जो कल होगी पर आज जैसी नहीं होगी।....

❖

जर्सी

शाम को जब विजय दफ्तर से लौटा तो उसे कल्पना ही नहीं थी कि विमा अभी तक सुबह के झगड़े की बात को लिए बैठी होगी। अपनी साइकिल एक ओर रखकर जूते उतारे और कुछ देर बाहर के ही कमरे में सुस्ताकर अन्दर रसोईघर में जा पहुँचा। विमा वहीं बैठी थी। उसने विजय को देखा, पर मुस्कुराई नहीं। उसके ऑफिस से समय पर घर पहुँच जाने पर कोई प्रसन्नता प्रकट नहीं की। विजय ने सोचा–शायद कुछ चुटकी लेने से विमा का मूड बदले। वह बोला—आज तो भई बड़े दिनों बाद खत आया है तुम्हारे घर वालों का। मगर उन्होंने तुम्हारे बारे में ज्यादा कुछ नहीं लिखा। बस, मेरी ही तरक्की, विदेश-यात्रा के चान्स आदि के बारे में पूछा है।

विमा चुप। उसने सिर्फ एक बार विजय की ओर देखा और पास रखी ऊन की डोरी को समेटने लगी। विजय को लगा जैसे उसका प्रयोग खाली गया। उसके मन के कोने में खेद की हल्की सी रेखा उभरने लगी। उसने सोचा–निश्चय ही विमा सुबह की बात को ही तूल दे रही है। वरना उसकी बाट देखते दरवाजे तक न आती। उसे घर में आया देख प्रसन्न न होती, पर नहीं। पिछले कितने ही दिनों से घर के वातावरण में एक अजीब सा तनाव पलता जा रहा है। उसने सोचा, विमा उसकी किसी बात को समझने की कोशिश नहीं करती। ऐसी छोटी-छोटी बातों पर नाराज हो जाती है, जिन्हें वह अधिक महत्व नहीं देता और फिर आज सुबह भी तो ऐसा ही हुआ था। न बात, न बात का नाम। खाना खाते समय उसने यूं

यह दिया था—विमा ? दिनभर ऊन और सलाइयों में उनके रहना ठीक नहीं। कम से कम खाना पकाते समय तो इनसे छुट्टी पा लिया करो। बना रही हो सब्जी का सत्यानाश हो गया। खाने को भी जी नहीं करता।

बात जहां से शुरू हुई थी, वहीं रह सकती थी। किन्तु विमा से रहा नहीं गया। बोली—जी हां, खाने को जी कैसे करेगा ? यह होटल का रसोई थोड़े ही है कि जब चाहा चीज चटपटी सब्जियां परोस दीं। बाहर की चीजें खाते-खाते आपकी जीभ का जायका ही बदल गया है। आपको तो बाहर की ही चीजें अच्छी लगती हैं। यह घर है। यहां गृहस्थी की गुन्जाइश के अनुसार सब्जी बनेगी—और विमा ने अपने हाथों से नई ऊन की वे लच्छियां एक ओर फेंक दीं जिन्हें वह विजय की बर्सी बनाने के लिए कल दाम खरीद कर लाई थी।

मेरा मतलब यह नहीं था विमा। तुम तो हमेशा मेरी बात को गलत समझ लेती हो—विजय ने कहा।

मैं आपका मतलब अच्छी तरह समझती हूँ। मैं अन्धी या मूर्ख नहीं हूँ कि इतना भी नहीं समझती। कई दिनों से देख रही हूँ कि आपको मेरी कोई बात, कोई चीज पसन्द नहीं आती। न आप खाना ठीक ढंग से खाते हैं और न घर के किसी काम में दिलचस्पी लेते हैं। वक्त-बेवक्त घर में आते हैं। छुट्टी के दिन भी सुबह निकलते हैं और रात गये लौटते हैं। आखिर मैं इस घर की बान्दी नहीं हूँ — विमा एक ओर खड़ी होकर रोने के मूड में हो आई।

कैसी बातें करती हो ? शर्म आनी चाहिए तुम्हें। यही वक्त मिला है तुम्हें यह सब बातें करने का। इस गन्दी सन्दी सब्जी को भी अब मैं नहीं निगल सकता। विमा, तुम दिनों दिन मूर्ख होती जा रही हो — विजय यह कहते हुए कुछ गम्भीर हो गया था।

हाँ, मैं तो मूर्ख ही हूँ। समझदार तो वे हैं जिन्होंने आप पर न जाने

या जादू डाल दिया है कि आजकल घर में आपका तनिक भी मन नहीं लगता — विभा ने फिर कहा।

क्या बकती हो ? किसने जादू डाल दिया है ? घर में मैं कब नहीं आता ? पिछले कई दिनों से देख रहा हूँ, तुम्हें सिर्फ अपनी बातों की पड़ी रहती है। मेरी हर बात पर झल्लाती हो तुम। कल गरम पानी चूल्हे पर चढ़ा रहा। तुमने बाल्टी में डाल देने की तकलीफ नहीं की। कल शाम मेरे दोस्त घर आये। तुम डेढ़ घण्टे तक बाजार से नहीं लौटी। वे बिना चाय पिये चले गये। कहा तो तुम उलटा मुझ पर झल्लायीं — विजय का पारा अब गरम हो गया था।

विभा चाहती तो बात यहीं खत्म हो जाती। किन्तु उससे रहा नहीं गया। आँखों में आँसू भरकर बोली—मैं ही दोषी हूँ। आपको अपने मन में तो कुछ भी दोष नजर नहीं आता। भगवान की सौगन्ध खाकर कहिये कुछ दिनों में आप कितने बदल गए हैं''' उस रात भी न जाने आपके मुँह से कैसी गन्ध आ रही थी।

विभा, तुम्हारी यह इच्छा है कि मैं चैन से रोटी नहीं खाऊँ तो ठीक है। मैं ये चला — कहते हुए विजय ने हाथों में लिया हुआ कौर छोड़ दिया था और जल्दी से कपड़े और जूते पहनकर दफ्तर की ओर हवा हो गया था।

विभा सिसक-सिसक कर रोती रही। वह सोचने—लगी कितनी मजबूर हो गई है वह यहाँ आकर। अपने घर से दूर, भाई-बहिनों से परे कि अपने मन से बात का बोझ भी हल्का नहीं कर पाती। किसे दिखाये वह अपने मन के तूफान को। किसे सुनाये वह अपनी भावनाओं के उफान की कहानी। कोई भी तो नहीं जो उसे सान्त्वना दे सके। न कोई घर का, न बाहर का। आज पहली बार उसे लगा कि सास के न होने की बात को जो लड़कियाँ सोचती हैं वे कितने भ्रम में होती हैं। विभा ने सोचा, उसकी माँ उससे दूर है। सास की सेवा उसके भाग्य में नहीं लिखी।

माम ! आज वो होतीं तो यह उनकी गोद में सर रखकर कहती—माँ, इन्हें समझाओ। मैं सभी कुछ तो करती हूँ इनके लिए। घर पर हर काम। अब तुम्हीं बताओ अगर कल बाजार चली गई तो रिसाइए ! इन्हीं की जर्सी के लिए नई ऊन लानी थी। इन्हें ऊन दिखाने की सोच रही थी तो यूँ रूठकर चले गये हैं, जैसे मैं इनकी ब्याहता पत्नी नहीं कोई रखैल हूँ।

विजय के भोजन पर से उठकर चले जाने से उसे बहुत दुःख हुआ। उसके मन में भावनाओं का ज्वार और भी बढ़ गया। आज विजय के साथ बिताये गए तीन वर्षों के दिनों और घड़ियों को वह एक एक कर गिनने लगी थी। वह सोच रही थी—जब तीन वर्ष पूर्व उसकी शादी हुई थी तो विजय कितना करीब था उसके। उसे कोई शिकायत नहीं थी विजय को। अगर थी तो सिर्फ यह कि वह दिन रात विजय के पास नहीं रह सकती। उसके उठने से पूर्व ही बिस्तर से उठ जाती। विजय के सोने के थोड़ी देर बाद बिस्तर पर आती और घर के काम की वजह से उसके साथ पिक्चर जाने या घूमने को निकलने के लिए मना कर देती।

और अब, स्वयं विजय उससे दूर भागने लगा है। अब वह तो आती है तो घर पर आता है। कभी महीनों में पिक्चर जाने या घूमने की बात नहीं करता। और करता भी है तो उसके आग्रह में वह जोश, वह बात नहीं लगती। शायद ऐसा स्वयं वह सोचती हो या कि कुछ और। पर इतना वह अवश्य समझने लगी है कि उसमें विजय की दिलचस्पी अब कम होती जा रही है। पहले तो किसी न किसी बात पर रोज कुछ साथ [illegible], [illegible], नाराजगी। यह भी कोई जिन्दगी है। आज भी [illegible] कहे कल। अगर ठीक ढंग से कहते [illegible] पिक्चर में कोई [illegible] बना देती, कुछ कर देती या चटनी बना देती। लेकिन "ठीक है मगर तो ऐसा समझना है कि मैं इनके लिए कुछ [illegible] हूँ [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। मैं आज ही [illegible] [illegible]।

र कभी नहीं आऊंगी। बुलाने पर भी नहीं। यही निश्चय करके शाम
। वह रसोईघर में हल्के कोयले जलाकर बैठी थी।

विजय दफ्तर से लौटा था तो सुबह की बात को भुलाकर। पर
विभा ने निश्चय कर लिया था कि या तो वह आज विजय से हमेशा एकसा
ना रहने का आश्वासन लेगी या फिर उसे छोड़कर चली जायेगी।
आखिर वह उसकी पत्नी है-अगर विजय उसे दो कड़वी बातें कहता है तो
उसे सुनने की भी हिम्मत रखनी चाहिए। रोज के झगड़े से कोई लाभ
नहीं। विजय के लिए छोटी सी बात के पीछे कोट डालकर घर से निकल
जाना आसान है। पर वह ऐसा नहीं कर सकती। उसे सिर्फ रोना पड़ता
है। सिर्फ रोना।

सुनिये, मैंने मायके जाने का फैसला कर लिया है — विभा ने
गम्भीरतापूर्वक कहा।

क्यों? ऐसी क्या तकलीफ पड़ी हो गई है?-विजय ने पूछा।

तकलीफ नहीं, मैं अब आपको और कष्ट नहीं देना चाहती। मैं
चली जाऊंगी तो आप जहाँ चाहें जायें, जहाँ चाहें खायें, रहें और कभी
भी घर में लौटें। कोई आपको टोकने वाला नहीं होगा। मैं घर में
रहती हूँ तो····

देखो विभा, यह ठीक नहीं, तुम्हें शायद यह ख्याल है कि मैं तुम्हारे
बिना एक पल नहीं रह सकता। यह तुम्हारी भूल है — विजय ने विभा को
सुबह की ही तरह गम्भीर देखा तो उसे रोकने के स्थान पर यह और
कह दिया।

विभा ने एक क्षण सोचा था--अब विजय उसे जाने की स्थिति में
देखेगा तो अवश्य रोकेगा। पर अपनी आशा के विपरीत उसने यह सुना
तो वह तिलमिला उठी। बोली—हाँ, हाँ आपको मेरी गरज क्यों होने
लगी। गरज तो मुझे है जो दासी बनकर रह रही हूँ इस घर में। लेकिन

अब मुझे नहीं रहना है यहाँ। अब कभी नहीं आऊंगी — और व
लगी।

विभा, तुम्हारी यही जिद कभी तुम्हें मुश्किल में डाल देगी
नहीं चाहता कि तुम जाओ। पर यदि जाना ही चाहती हो तो सिर्फ
कहे देता हूँ—तुम्हें खुद ही लौटना पड़ेगा। मैं लेने नहीं आऊंगा – f
ने कहा।

मैं खुद ऐसे मनहूस घर में अब नहीं रहना चाहती, जहाँ मेरे
नौकरों का सा बर्ताव किया जाता हो — विभा ने रोते हुए
में कहा।

अच्छा, यदि तुम ऐसा समझती हो तो जहाँ चाहे जाओ। मैं तुम
टुकड़ों पर नहीं पलता हूँ। जो मन में आयेगा करूंगा। जो चा
खाऊंगा। जहाँ चाहूँगा रहूँगा। जब जी आयेगा घर आऊंगा, जब चा
नहीं आऊंगा – विजय के होंठ गुस्से से कांपने लगे।

विभा रसोईघर से ड्राइंग-रूम में गई और अपना सूटकेस उ
लाई। तमतमाती हुई बोली—तो सम्भालिये अपना घर। मेरे लिये
किसी कैद से कम नहीं है। मैं आठ बजे की गाड़ी से जा रही हूँ। का
खोलकर सुन लीजिये। फिर कभी इस घर में नहीं लौटूंगी।

विजय कुछ नहीं बोला। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि वह क
करे। आज से ठीक एक वर्ष पहले भी विभा ने मैके जाने की जिद की थी
तब तो उसके लौटने की भी उम्मीद थी, फिर भी उसने विभा का हाथ
पकड़कर उसका सूटकेस छीन लिया था। किन्तु आज, विभा सदा के लिए
जा रही है तब भी वह इतना साहस नहीं बटोर पा रहा है कि उसे रोक
कर सख्ती के साथ कुछ कह भी सके। एक क्षण विभा ने अश्रु भरे नेत्रों से
विजय की ओर देखा। फिर मुड़कर दरवाजे की ओर चली गई।
विजय हतप्रभ वहीं खड़ा रहा। उसमें कुछ भी कहते नहीं बन पा रहा
था। उसका मन रोने को हो आया। सोचने लगा, कैसी जिद्दी है यह।

मेरी परवाह किए बिना चली जा रही है। आखिर ऐसी कौनसी बात हो गई कि यह घर ही छोड़कर चली जाये। ठीक है अगर इसे इतना ही गर्व आ गया है तो जो जी में आये करे। मैं भी आखिर इंसान हूँ, इसकी मिन्नत नही कर सकता ....

उसने देखा कि विभा दरवाजे तक जाकर रुक गई है। वह मुड़ी और विजय के करीब आकर बोली—जारही हूँ। अपने स्वेटर के नीचे की पट्टी के फन्दे गिनवा दीजिये ताकि जर्सी ढीली न बन जाये।

विजय चुप रहा। विभा गरदनझुका कर विजय के स्वेटर की नीचे की पट्टी के फन्दे गिनने लगी।

विजय का मन एकाएक पसीज गया। कितनी भोली है विभा। उसे सदा के लिये छोड़कर जा रही है और उसकी जर्सी के फन्दे गिनना चाहती है। हे भगवान ! तूने मेरा मन इतना कठोर क्यों बना दिया है कि इस बेचारी की कोमल भावनाओं को ठुकराने का पाप करने के लिए उद्यत हो गया हूँ ?

विभा स्वेटर की पट्टी के फन्दे गिनती हुई विजय के बहुत करीब आ गई थी। विजय ने अपनी दोनों बाहों को उसके गिर्द फैलाकर उसे अपने अंक में भर लिया और उसकी पकड़ धीरे-धीरे सख्त होती गई....

मैले कपड़े : उजला मन

हमेशा की तरह आज भी वह ठीक समय पर कार्यालय पहुँच गया। अपनी जगह बैठने पर उसे अहसास हुआ कि आज फिर वह अपने पूर्व निश्चय के अनुसार कपड़ों में इस्त्री करके नहीं आ सका। सुबह तक उसे ख्याल था। किन्तु जब कार्यालय के समय से पूर्व ही उसे घर के तीन चार काम करने पड़े तो वह इस बात को भूल-भाल गया। कार्यालय आने का समय हुआ और वह भोजन से निवृत्त हो, कुर्त्ता-पायजामा डालकर रवाना हो गया। रास्ते पर उसने अपने कपड़ों के विषय में कुछ नहीं सोचा, क्योंकि तब वह अपने देश के अन्न-संकट के विषय में सोच रहा था। अपनी सीट पर पहुँचने के तुरन्त बाद उसे अपनी स्थिति का भान हुआ और वह अपने देश के अन्न-संकट के विषय में सोचने की बजाय स्वयं अपने विषय में सोचने लगा। अपने कुर्त्ते पर पड़े बल देखकर उसके ललाट पर भी बल पड़ गए। उसके मस्तिष्क ने कल कार्यालय में दोस्तों के मध्य हुई बातचीत को दुहराया। केन्टीन में सक्सेना देवन, भानू और धर्मेन्द्र उसके करीब घिर आये थे।

सक्सेना बार-बार अपनी नाक को खुजलाता हुआ उससे कह रहा था—भई गिरीश बाबू, ऐसा भी क्या ? हम भी तो तुम्हारी ही तरह क्लर्क हैं। बस, जो कुछ पाते हैं, वही लगी-बुली तनखा। मँहगाई आसमान को छू रही है। फिर भी दोस्त ! आफिस आने का 'स्टेण्डर्ड' तो 'मेन्टेन' करना ही पड़ता है। तुम तो यार, इस ओर से बिलकुल ही बेखबर हो रहे हो। ... ...धोबी से नहीं धुला सको तो खुद धो लिया करो। मगर........

तभी भानु बोल पड़ा—यार, एक तुम हो और एक हैं अपने हैडक्लर्क सत्येन। कोई दिन नहीं जाता जिस दिन साफ धुले, इस्त्री किये हुए कपड़े पहनकर दफ्तर नहीं आते हों। वह दस रुपये ही तो अधिक पाते हैं हम सबसे। उस पर कितने साफ सुथरे रहते हैं वे ?

तभी भानु की बात पर एतराज करता हुआ देवन बोला—अरे यार, इस परिवार के भार का भी तो फर्क पड़ता है। सत्येन पर केवल चार प्राणियों का भार है और अपने गिरीश बाबू को पूरे आठ सदस्यों की गाड़ी को खींचना पड़ता है।

अरे भई हैडक्लर्क की बात छोड़ो। कहाँ वह काले मन का आदमी और कहाँ उजले दिल के गिरीश बाबू। उसका और इनका क्या मेल ?

धर्मेन्द्र ने बीच में ही कहा—तुम भी किसके साथ इनकी तुलना करने लग गये। चलो, चलो लंच खत्म हो गया। चलकर सीट पर पहुँचें और फिर गिरीश से सहानुभूति जताता हुआ बोला—चिन्ता मत करो दोस्त, कपड़ों की सफाई से क्या होता है ? असल में हमारा दिल साफ होना चाहिए। दिल की सफाई कपड़ों की सफाई से कहीं ज्यादा जरूरी है।

उसने चारों साथियों के किसी भी कथन का प्रतिवाद नहीं किया था और चाय पीकर वे पुनः कार्यालय आकर अपने अपने काम में लग गये थे।

आज उसने फिर सोचा। आखिर अपने दोस्तों को उसने अपने कपड़ों के विषय में बातचीत करने का मौका ही क्यों दिया ? पिछले दिनों जैसे-तैसे वह कपड़े साफ करके खुद ही उन पर इस्त्री भी कर लिया करता था। किन्तु पिछले महीनों से उसके घर का बजट काफी घाटे में चल रहा है। दो बार उसकी पत्नी सख्त बीमार हो गई। छोटा मुन्ना करीब दो माह से बराबर अस्वस्थ है। पिछले महीने उसे स्कूल में पढ़ रहे तीनों बच्चों की फीस एवं अन्य खर्चा भारी पड़ गई। फिर वह अपने दायरे से उनकी

छोटी बहन भी आ गई। कल ही उसे विदा किया। विदा करते समय कुछ
छोटे कपड़े, दो साड़ियाँ और कुछ खाने पीने की चीजें भी देनी पड़ गईं
इन सभी बातों की चिन्ता में उसे प्रायः अपनी चिन्ता नहीं रह पाई। इन
दिनों अपने कपड़े वह जैसे भी होते अपने शरीर पर डालकर दफ्तर पहुँच
जाता।

इन सब कठिनाइयों के उपरांत भी वह समय पर कार्यालय पहुँचता
और निष्ठापूर्वक अपने काम को करता, इसका उसे संतोष था। पर शायद
दूसरों को इस बात से अधिक संतोष होता यदि वह दफ्तर में नित्य न
और इस्त्री किये हुए कपड़े पहनकर आता—उसने सोचा।

साहब आप को याद फरमा रहे हैं—चपरासी के इस कथन ने उसकी
विचार शृंखला तोड़ दी। वह फौरन खड़ा हो गया। किन्तु दूसरे ही क्षण
फिर उसके मस्तिष्क में यही ख्याल आने लगा। यद्यपि उसकी पत्नी
अस्वस्थ होते हुए भी कल ही उसके कपड़ों में साबुन मली थी। फिर भी
वह इस्त्री के अभाव में पुराने ही लग रहे थे। एक क्षण उसने सोचा—व
चपरासी को झूठ-मूठ कुछ कहकर साहब के सामने जाने की बात को टा
दे। किन्तु चाहकर भी वह ऐसा नहीं कर सका और हिम्मत जुटाकर व
साहब के कमरे में पहुँच गया।

मुझे याद किया आपने—गिरीश ने कुछ इस तरह से सकपकाते हु
कहा कि साहब उसे सिर्फ अपने मतलब की बात ही पूछ सकें, उसके कप
के विषय में कुछ नहीं कहें।

हुआ भी यही। साहब ने उसे उसके कपड़ों के विषय में कुछ न
कहा। किन्तु जितनी देर तक वे कार्यालय के कागजों के विषय में बातची
करते रहे, चश्मे से झाँकती हुई उनकी आँखें उसके कुर्ते पर पड़े हुए ध

था।

आकर उसने अपने मन के संकल्प को दुहराया। कम से क

हमेशा अच्छे कपड़े पहनकर कार्यालय आयेगा। यदि खुद उसे समय नहीं मिला तो अपनी पत्नी को कहेगा कि वह सुबह जल्दी उठकर उसके कपड़ों को धोकर उसमें इस्त्री कर दे।

तभी उसने देखा कि सामने हैडक्लर्क की टेबल पर हंगामा सा होने लगा है। 'काउण्टर-क्लर्क'-प्रभुदयाल और सत्येन बाबू एक दूसरे पर गुर्रा रहे थे। प्रभुदयाल को यह शिकायत थी कि सत्येन बाबू की वजह से साहब ने उसको लम्बी छुट्टी देने की मनाही कर दी। उसके काम को कोई महत्व नहीं दिया। सत्येन बाबू कह रहे थे कि प्रभुदयाल को बार-बार छुट्टी लेने की आदत हो गई है, जिससे कार्यालय के काम में हर्ज होता है।

बात को पूरी तरह समझने के बाद सभी क्लर्कों ने महसूस किया कि सत्येन यदि उसके पक्ष में टिप्पणी दे देता तो प्रभु को छुट्टी मिल सकती थी। वह पुनः अपनी सीट पर आकर अपने काम में लग गया।

उस दिन के बाद भी वह कई दिनों तक ऐसे कपड़े पहनकर कार्यालय नहीं आ सका, जिन्हें उसके साथी अच्छा कहते। पर उसके दिल में कोई खास रंज नहीं था, क्योंकि वह अपना काम ठीक ढंग से करता था। कपड़ों से ज्यादा इन दिनों वह दफ्तर के काम का ख्याल रखता था। उसके साथियों ने भी इन दिनों कभी कपड़ों का जिक्र नहीं किया।

आज कार्यालय में गिरीश कुछ देर से पहुँचा था। कुर्सी पर बैठा ही था कि सत्येन बाबू उसके पास आये। उनका मूड आज कुछ बदला-बदला सा लग रहा था जैसे वे कुछ परेशान से हों। दरअसल था भी ऐसा ही। गिरीश ने उन्हें बैठने को कहा।

सत्येन बाबू खड़े-खड़े ही बोले—अभी इनका सर चढ़ गया है इन पाजियों का कि अब हमारे सामने भी सर उठाने लगे। आप ही बताइये गिरीश बाबू, भला रामधन चपरासी ने आज मुझे काम के लिए इन्कार किया है। कल साहब को जवाब देगा। फिर ऑफिस में डिसिप्लेन कैसे रह पायेगा? आखिर हमारी भी तो कोई जिम्मेदारी है!

जी हां, उसे ऐसा नहीं करना चाहिए था—गिरीश ने तटस्थ भाव से कह दिया।

सत्येन को लगा कि गिरीश से उन्हें वह सहानुभूति मिल गई है जिसकी वे आशा करते थे। बोले—अजी थोड़ा बाजार का काम बता दिया तो कौनसा गुनाह कर दिया मैंने ? आखिर हैडक्लर्क हूँ, चपरासी को इतना मुंहफट नहीं होना चाहिए कि काम को साफ इन्कार कर दे।

मैं उसे डाट दूंगा ? आप उसे माफ कर दीजिये।

मैं माफ कर दूं ? अब देखते जाइये कि इस आफिस में उसकी क्या गति होती है। अगर उसे नौकरी से नहीं निकाला तो मेरा नाम भी सत्येन नहीं—सत्येन बाबू एक बार फिर गुस्से से तमतमाने लगे।

गिरीश ने उन्हें शांत करने की चेष्टा की। पर वे गुस्से में भरे हुए ही अपनी कुर्सी पर चले गये।

कार्यालय के अन्य मित्रों से मालूम करने पर गिरीश को पता चला कि सत्येन बाबू एक अर्से से रामधन को अपने घर बुलाकर उससे काम लेते रहे हैं। पिछले तीन चार दिनों से रामधन की औरत बीमार है। अतः वह उनके घर नहीं जा सका। आज सुबह जब वह अपनी छुट्टी की अर्जी देने आया तो सत्येन बाबू ने उसे अपने घर पर काम करने के लिए जाने को कहा। रामधन ने मजबूरी जाहिर की और कहा कि पहले अस्पताल जाकर वह अपनी औरत के लिए दवाई लायेगा फिर उनके घर पहुँच जायेगा। इस पर सत्येन बाबू बिगड़ गए और उसे भला-बुरा कहकर लौटा दिया।

उसी दिन शाम, किसी और मामले को लेकर धर्मेन्द्र और सत्येन के बीच भी कहा-सुनी हो गई।

कार्यालय में घटने वाली सभी घटनाओं पर गिरीश का एक अलग नजरिया, एक विशिष्ट दृष्टिकोण था। वह हमेशा किसी बात की तह तक पहुँचने की चेष्टा करता था। ऐसा करते हुए हर बार उसे सत्येन बाबू की

ही भूल नजर आती। वह चुप हो रहता। पर हाँ, उसे कभी-कभी उनके सफेद और उजले कपड़ों में मैल की एक गहरी रेखा दिखाई देती जिसे वह देखकर भी नहीं देखना चाहता था।

आखिर एक दिन आया जब कार्यालय से धर्मेन्द्र का तबादला हो गया और रामधन को नौकरी से अलग कर दिया गया। उसकी बीमार औरत अस्पताल में पड़ी थी और बच्चों के भरण-पोषण का भार उस पर काली छाया की तरह मंडरा रहा था। रामधन रो-पीटकर भी सत्येन बाबू को राजी नहीं कर सका। उसकी बर्खास्तगी के कागज सत्येन बाबू ने बड़े साहब के लम्बे दौरे पर जाने के एक दिन बाद दिये। ताकि शीघ्र ही कोई कार्यवाही भी न हो सके। सभी सत्येन बाबू के स्वभाव से परिचित थे। अतः मन मसोसकर रह गए।

शाम को शहर के रेस्तरां में धर्मेन्द्र बाबू को विदाई पार्टी दी जाने वाली थी। कार्यालय के सभी लोग इस पार्टी में शामिल होने वाले थे। छुट्टी के कोई आधा घंटा पूर्व गिरीश ने धर्मेन्द्र के करीब जाकर कहा—दोस्त आज तुम हमसे बिछुड़ रहे हो। पता नहीं फिर कब मिलना हो। तुम्हारी पार्टी तो साढ़े छह बजे है। उससे पहले मैं एक बार घर हो आना चाहता हूँ।

लेकिन क्यों? कार्यक्रम तो यहाँ से सीधे रेस्तरां चलने का है—धर्मेन्द्र ने गिरीश से कहा।

गिरीश ने कुछ सकुचाते हुए कहा—नहीं। बात कोई खास नहीं··· मैं सोचता था···मैं चाहता था···कि घर जाकर कुछ ठीक-ठीक कपड़े पहनकर आ जाऊं तो अच्छा रहेगा। मेरा विचार तो आज सवेरे ही धुले कपड़े पहनकर आने का था किन्तु देर हो जाने के ख्याल से नहीं पहन सका। तुम कहो तो···

अरे गिरीश, तुम भी कमाल करते हो। मैंने नहीं कहा था भैया?

कपड़े साफ होने या न होने से कोई अन्तर नहीं पड़ता। हमारा दिल साफ होना चाहिये ! समझे ! इतना कहकर वह उस ओर चला गया जहाँ रामधन चपरासी गुमसुम बैठा आंसू बहा रहा था।

आज पहली बार गिरीश को अपने पुराने और मैले से कपड़ों पर संतोष हुआ। उसने सोचा-उसके कपड़े मैले हैं तो क्या हुआ, उसके दिल में मैल नहीं। उसने अपने स्वार्थ के लिए किसी का अहित नहीं किया। उसका दिल साफ है। वह धर्मेन्द्र की पार्टी में इन्हीं कपड़ों में जायेगा। इन्हीं मैले से कपड़ों में....।

कैरेक्टर एक बीसवीं सदी का

सोलहवाँ लगते-लगते उसने महसूस किया कि वह काफी लम्बा हो गया है। चेहरे पर नाक के नीचे और ठुड्डी तथा गालों के निचले हिस्से में कुछ बाल दिन व दिन बढ़ते जा रहे हैं, जो उसे पसन्द नहीं। उसके गालों में अब पहले से अधिक ललाई आ गई है। उसे अपना सफेद पेंट जिसकी मोहरी कोई बाईस इंच थी, बिल्कुल ढीला और मिसफिट लगने लगा था। अपनी बुशशर्ट जिसे वह पिछले कई दिनों से अपने शरीर पर लादे हुए था, भारस्वरूप लगने लगी थी। उसे बार-बार ध्यान आता कि सुगन्धित साबुन से नहाए हुए आज उसे कई दिन हो गए हैं। कई बार उसे अपनी बनियान से पसीने की अजीब सी गंध आने लगती।

अपनी रुचियों में भी उसे अजीब तब्दीली नजर आई। अब उसे मीठी गोलियाँ पसन्द नहीं आतीं। मेला या रामलीला देखने का इच्छुक अब वह नहीं रहा था। वह कोई धार्मिक पुस्तक उठाकर देखता तो उसका एक भी पृष्ठ नहीं पढ़ पाता और उसे अलग रख देता। उसे अपने पिताजी की आँखों में गुस्से के लाल डोरे अब बिल्कुल फीके नजर आते। माँ की मार, धमकियों का उस पर कोई असर नहीं होता।

एक दिन उसने मन ही मन निश्चय किया और शहर के आलीशान हेयर-ड्रेसर की दूकान में जाकर अपने चेहरे पर उग आये निरर्थक बालों को कटवा दिया। वह 'क्लीन-शेव्ड' होकर दूकान से बाहर निकला तो उसे लगा जैसे उसके अन्दर नई जान आ गई है। शरीर के पोर-पोर में फुर्ती भर गई है। हवा का एक झोंका आया और उसके गालों को छूकर

निकल गया। उसने खास तरह की ठंडक महसूस की। उसका दाहिना हाथ बरबस ही उठकर गालों को सहलाने लगा और बार-बार सहलाता रहा। वह चाहकर भी अपने दांए हाथ को गालों तक पहुँचने से रोक नहीं सका। अपने दाहिने हाथ की यह क्रिया उसे अत्यन्त स्वाभाविक और आवश्यक लग रही थी। पहले तीन दिन के अन्तर में, बाद में हर दूसरे दिन और फिर वह हर रोज शेव करने लगा। वह स्वयं एक जर्मन रेजर खरीद लाया था। शेविंग का दूसरा सामान भी जो वह लाया था, निहायत आधुनिक और नई डिजाइन का था। नाइलोन का ब्रश, गोदरेज का कपसोप, और प्रिंस रेजर ब्लेड। शेविंग अब उसकी दिनचर्या का आवश्यक अंग बन गई थी।

वह प्रायः देर तक शीशे के सामने खड़ा कर अपने मुख को निहारता। बालों में कंघ करते समय वह अपनी भवें भी काढ़ लेता। पहले उसे हल्के बाल पसन्द थे। पर अब वह उन्हें तब तक नहीं कटाता जब तक उसकी जुल्फें उलझकर कानों के पिछले हिस्से को छूने नहीं लगतीं।

घर से निकलता तो सुगन्धित साबुन से स्नान करके। अब उसने टेरेलिन की कसी कसी टी शर्ट और तंग मोहरी की पेंट पहनना शुरू कर दी थी। नुकीली टो वाले जूते पहनकर चलने पर उसे लगता जैसे वह जमीन पर नहीं चल रहा हवा में तैर रहा है। वह सुपर-फाईन कपड़े वाला रूमाल हर समय अपने पास रखता।

पुरानी और आवाज करने वाली साईकिल पर बैठना अब उसे नहीं भाता। साईकिल हो तो नई और एकदम। जूतों पर चमक न हो तो उन्हें पैरों पर डालना उसे खलता। हर तीसरे दिन किसी होटल के सामने खड़े होकर जूतों में पालिश कराने में उसे विशेष प्लेजर महसूस होता।

'वर्सिटी' में शाम के वक्त काफी पिये बिना उसे चैन नहीं पड़ता। वह कोर्स की किताबों में उतना नहीं डूब पाता जितना कि सभी फिल्म के

उपन्यास पढ़ने में। वह अपने मित्रों और परिचितों से कभी-कभी काम-विज्ञान की कुछ पुस्तकें ले भी आता, जिन्हें वह अवसर रात को पढ़ता, जब उसके परिवार के प्रायः सभी सदस्य सो चुके होते।

सितम्बर माह के एक दिन उसने टॉकीज में लगी एक नई फिल्म का मेटिनी शो देखा। घर आकर उसने महसूस किया कि फिल्म के हीरो की भांति उसे भी किसी लड़की से प्यार करना चाहिये।

इसके लिए उसे अवसर भी मिल गया। शाम हो चली थी। वह रोज की तरह छत में आकर किसी फिल्म का एक गीत मन ही मन गुनगुनाने लगा। तभी उसकी नजर सामने वाले मकान पर पड़ी। मकान से खिड़की पर और फिर खिड़की मे खड़ी वकील साहब की लड़की तृप्ति पर केन्द्रित हो गई।

उसने अब तक सैकड़ों बार तृप्ति को देखा होगा। परन्तु आज उसे लगा कि वह पहली बार उसे देख रहा है। उसकी आखों के सामने अभी-अभी देखी गई फिल्म के रोमांटिक दृश्य चित्रवत घूम गये। उसने मन ही मन एक आह भरी और दृष्टि जमाकर तृप्ति को देखता रहा। तभी तृप्ति ने भी उसकी ओर देखा। शरीर मे अन्दर तक एक कम्पन दौड़ गया। उसने एक विचित्र सी ठंडक महसूस की।

तृप्ति ने एक बार। दो बार और फिर कई बार उसकी तरफ देखा और मुस्कुराकर खिड़की बन्द करली। वह देखता ही रह गया। उसके पाँव जमीन पर नहीं जम रहे थे। तृप्ति की इस क्रिया से उसे विशेष प्रकार का तोष प्राप्त हुआ।

फिर उसे जब भी अवसर मिलता, वह तृप्ति को देखता रहता। तृप्ति ने भी एक-दो बार साहस करके उससे आंखें चार की। किन्तु उसकी दृष्टि हर बार फिसलकर किसी दूसरी जगह पहुँच जाती और वह उसके अलावा हर चीज को बहुत गंभीरता से देखने लगती जैसे उसे उसके देखने

का जरा भी अहसास नहीं। तृप्ति अब कई-कई बार व
वाले कमरे मे आती और लौट जाती। वह उमे ए
उसे तृप्ति के बालों में चमक, आंखों मे लहराता हुआ
चाल मे मस्ती नजर आने लगी थी।

कुछ दिनों बाद उसे अहसास हुआ कि उसे कुछ
बहुत सोच विचार के बाद वह इस नतीजे पर पहुंचा
प्यार हो गया है।

एक रात उसे देर तक नींद नहीं आई और उसके ख्याल उ
दुनियां मे ले गये। उसने देखा—आकाश ने बादल छाये हुए हैं
प्रकाश रह-रह कर बादलों से छनकर आरहा है और धरती पर
आभा तैर रही है। नदी के एक छोर पर वह और उसकी
रखसे हुए तृप्ति उसके बहुत करीब है। वह उसके सुनहरे बालों को
हुआ कह रहा है—मेरी प्रेयसी, मैं जन्म-जन्मान्तर से तुम्हें प्रे
हूं। हमारा यह मिलन नया नहीं। हम चिर परिचित है।

है— तृप्ति मोहक स्वर मे उसके कथन को स्वीकारती है।
सुनो-तृप्ति की दो कजरारी आंखें चांदनी के धवल प्रकाश मे
उठती हैं-तुम मुझे प्यार करते हो ना?

हां! अन्तर के कण-कण में तुम्हारा नाम अंकित है। मैं तु
दय मे चाहता हूं। तुम मेरी जीवन सहचरी हो—वह कहता है।

उसे ख्याल ही न रहा कि कब उसको आंख लग गई। उसने बा
ई बार दिन मे भी सपने देखे और कल्पना के महल खड़े करता रहा
के प्यार का खुमार दिन भर उसकी आंखों में छाया रहा। सो-
सोते-जागते उसे तृप्ति का ख्याल आता रहता।
हकीकत में वह तृप्ति को दिन-दिन भर इशारे किया करता और
हिकारत से देखती और बाद मे

ऐसे ही लगभग एक वर्ष का समय गुजर गया। उसके प्यार का खुमार थोड़ा हल्का तब हुआ जब उसका परीक्षा-फल निकला। वह फेल हो गया था। तभी उसे अहसास हुआ कि प्यार करने के अलावा उसका एक और काम भी है। किन्तु जब उसने देखा कि उसके फेल हो जाने पर भी तृप्ति उसे वैसी ही मुस्कुराहट से निहाल करती है, उसकी नजरों में जरा भी फर्क नहीं तो उसने घरवालों की किसी बात की परवाह नहीं की और शीघ्र ही परीक्षा और परीक्षाफल की बात को भुलाकर फिर से प्यार में प्रवृत्त हो गया।

अब वह तृप्ति से घर के बाहर स्कूल के रास्ते में मिलने लगा। उसे कैडबरी चाकलेट देता जो उसे बहुत पसन्द थी। प्यार का यह व्यापार एक अर्से तक यूँ ही चलता रहा।

तृप्ति ने मेट्रिक पास कर लिया था और अब वह कॉलेज में पढ़ने लगी थी। एक दिन वह कॉलेज न जाकर उसके साथ पार्क में पहुँच गई। वे दोनों पार्क में एक ऐसे कोने में बैठ गए जहाँ से वे सबको देख सकें पर उन्हें कोई नहीं देख पाए। तृप्ति कहने लगी–जानते हो मेरे पिताजी मेरे लिए वर देख आए हैं। उसके साथ मेरी सगाई तय कर दी है। अप्रैल में मेरी शादी हो जायेगी। तुम मुझसे मिलना बन्द कर दो। इन सब बातों को भूल जाओ और देखो, अगर तुम्हें मुझसे सच्चा प्यार है तो अब मुझसे मिलने की कोशिश न करना।

तृप्ति इतना कहकर उठी और चली गई। वह जड़वत वहीं बैठा रहा। कुछ देर में उसका ध्यान टूटा तो उसे लगा जैसे उसके मन के तारों को अनायास ही किसी ने निर्दयता से झंकृत कर दिया है। उसके शरीर का खिंचाव ढीला पड़ता जा रहा था। वह उठकर भारी कदमों से चलता हुआ घर आ गया। उसे लगा जैसे कोई बोझ उसके मन पर आन पड़ा हो। वह बेचैन और गमगीन सा हो रहा।

उस रात वह सो नहीं सका और फिर कई रातें उसने आंखों
आंखों में गुजार दी। तृप्ति का विवाह किसी और से हो गया। वह
में बैठकर चली गई। एक आदर्श फिल्म के हीरो की तरह उसने अपना
दिल पत्थर का बना लिया और मन ही मन कुढ़कर रह गया। आंखों
आंसू की एक भी बूंद झलकने नहीं दी।

बाद के दिन उसने तन्हाई के एक अजीब माहौल में गुजारे। अब न
उसे चुस्त और उजले कपड़े पहनने का शौक रहा था, न बाल काढ़ने का।
शेव किये भी कई-कई दिन हो जाते। न पढ़ने में जी लगता, न फिल्म
देखने मे आनन्द आता। छत पर बैठकर अपने प्यार की स्मृतियों को ताजा
करते-करते वह रो पड़ता। कई बार उसकी इच्छा हुई कि वह उड़कर तृप्ति
के पास पहुंच जाये। उसे कहीं भगा ले जाये। उसके मन में एक बार फिर
अपने प्यार का तूफान उभार दे। पर वह ऐसा कुछ नहीं कर सका। अलबत्ता
वह सबसे बेखबर और-दूर रहने लगा। उसके माता पिता से उसकी यह
अवस्थादेखी नहीं गई। जब उसका मन पढ़ाई में लगता नहीं देखा तो उसे
किसी दफ्तर में क्लर्क की खाली जगह पर लगवा दिया।

अब वह दिनभर दफ्तर मे काम करके आता तो थकान महसूस
करने लगता और निढ़ाल सा पलंग पर पड़ा रहता। यही उसकी दिन-
चर्या रह गई थी। कुछ दिनों बाद उसकी अवस्था में थोड़ा परिवर्तन
आया। दफ्तर का काम वह अब विशेष ध्यान से किया करता।

समुद्र में जैसे ज्वार उठा और गुजर गया। एक तूफान आया और
शान्त हो गया। उसके जीवन में एक दूसरी लड़की आई। उसके चेहरे पर
फिर से आशा की मुस्कान खेलने लगी। उसका जीवन एक बार
फिर व्यवस्थित हो गया। प्यार के गम कहीं दूर जाकर छिप गये। उदासी
हटे पाँव मोड़ गई। उसके मन की आशाएं नये सिरे से मंगल मनाने
लगीं।

अब वह उत्तम साहित्य पढ़ता और यदा-कदा ईश्वर का नाम भी ले लिया करता। समय पर काम करने जाता और समय पर घर लौट आता। अपने कपड़े उजले रखता, शेव भी करता और पालिश-शुदा जूते भी पहनता। रात को देर तक खुलकर हंसता भी और छत पर जाकर किसी नई फिल्म का गीत भी गुनगुना आता। निश्चय ही इस परिवर्तन का श्रेय इस नई लड़की को था। यह उसकी उम्र का सताइसवां वर्ष था और यह नई लड़की उसकी पत्नी थी।

❖

बसे बड़ी सजा

चौधरी केसोराम को जब गांव में सरपंच के पद पर चुन लिया गया
लोगों ने उसी शाम धूमधाम से जलूस निकाला। यों गाँव में पहले भी
च और सरपंच चुने जाते रहे थे किन्तु इस बार सरकार के संरक्षण में
हली बार पंचायत के चुनाव हुए थे। गाँव भर में उत्साह और उमंग की
क लहर दौड़ गई। एक ओर हर्ष के दीप जलाये जा रहे थे तो दूसरी
र मंगल बिहारी के घर मातम मनाया जा रहा था। सांझ हो चली थी।
अब तक घर में अंधेरा छाया हुआ था।

मंगल बिहारी की आज बहुत बड़ी हार हुई थी। वह केसोराम के
रोध में पंचायत के सरपंच पद के लिए खड़ा हुआ। किन्तु लाख कोशिश
ने पर भी उसको विजय नहीं हो सकी। घर की देहरी पर बैठा सिर
हाथ रक्खे वह सोच रहा था–आज पहली बार मैंने इस गाँव में हार
है। पंचों ने मेरे साथ विश्वासघात किया। कल तक सब पंच मेरे पक्ष
। किन्तु आज·······

तभी भीखू पहलवान जो मंगल बिहारी की बगल में ही बैठा था,
वरण की खामोशी को तोड़ते हुए बोला–भैया मंगल, ऐसा भी क्या ?
जीत तो होती ही रहती है। तुम तो उसे लेकर ही बैठ गए।

भीखू, मुझे हार की परवाह नहीं। सोच तो सिर्फ इस बात का है
क ही दिन में केसोराम ने सब पंचों का विश्वास कैसे जीत लिया ?
जरूर कोई चाल रही है–मंगल बिहारी ने आश्चर्य कहा और फिर
तरह शंकाओं और विचारों में खो गया।

सच पूछो भैया, आजकल किसी की जुबान का एतबार नहीं। तुम तो जानते हो कि तुम्हें पंच का चुनाव लड़ने में भी कितना खर्च करना पड़ा था और फिर जीते तो सिर्फ तीन वोटों से। अब तुम्हीं कहो, जिन्होंने रुपये लिये थे उन सबने वोट दिये होते तो क्या तुम सिर्फ तीन वोटों से जीतते ? और अपने सहानुभूति के स्वर को अधिक बल देने के लिहाज से भीखू ने कहा—मगर भैया, घबराओ नहीं, केसोराम के नाम को गाँव में बदनाम नहीं कर दिया तो भीखू नाम नहीं मेरा।

मंगल बिहारी जो अब तक भीखू की बात को निहायत साधारण ढंग से सुन रहा था, कुछ चौंका और उसकी तरफ देखकर कहने लगा—लेकिन भीखू, इस गांव में केसोराम के नाम को बदनाम करना इतना आसान नहीं जितना तुम समझते हो।

लेकिन भैया, भीखू भी कच्ची गोलिया नहीं खेला। हम गाँव के लोगों को यह कहने थोड़े ही जायेंगे। बात ऐसी बनेगी कि लोग खुद ब खुद केसोराम की कीमत आंक लेंगे।

ठीक यही करना होगा—कहते हुए मंगल बिहारी का स्वर कुछ मंद पड़ गया था। उसने आस-पास एक शंका भरी नजर दौड़ाई और भीखू के नजदीक आकर पूछा—लेकिन करोगे क्या ? यह काम जल्दी से जल्दी होना चाहिए।

सुनो, — भीखू ने खड़े होकर बिजली जलाई और घर के अन्दर जाने के कमरे का दरवाजा बन्द करके पुनः बैठ गया। बोला—देखो, आज से पन्द्रहवें दिन केसोराम की लड़की की शादी है। सरपंच होने के साथ-साथ पंचायत के कोष का मालिक भी वही है। सारा पैसा केसोराम के घर की तिजोरी में है। लोग शादी की खुशियाँ मनाने में लगे होंगे। उसी रात सारा माल·······दूसरे ही दिन गाँव भर में बात फैल जायेगी। कोई केसोराम पर विश्वास नहीं करेगा। सभी समझेंगे कि केसोराम ने पंचायत के पैसों से बेटी के हाथ पीले कर दिये। बस ···आगे फिर···

भीखू ने हर बात इतनी धीरे से कही थी किन्तु मंगल बिहारी म
हुआ समझ रहा था। भीखू के मुँह पर हाथ रखते हुए उसने कहा—लेकि
इसकी कानोंकान किसी को खबर नहीं होने पाये।

नहीं होगी, मगर इस सारे काम में कम से कम तीन सौ रुपयों की
जरूरत पड़ेगी।

कोई बात नहीं, मुझे मंजूर है।

दोनों उठ खड़े हुए। भीखू ने अपना डंडा उठाया और अपनी बड़ी-बड़ी काली मूछों पर ताव देता हुआ अपने भारी शरीर को ठिगने पैरों के बल खींचता हुआ बाहर हो गया।

●

केसोराम की लड़की की शादी में पहले तो केवल तीस लोगों की बारात आने की बात तय हुई थी। किन्तु जब उन लोगों को उसके सरपंच हो जाने की खबर मिली तो बारात में एकाएक ही छोटे-बड़े मिलकर सत्तर लोग आ टपके। केसोराम फिर भी हिम्मत करके बारात के स्वागत-सत्कार में लगा रहा। व्यवस्था का सम्पूर्ण भार उसी पर था।

शादी के एक दिन पूर्व बारात के साथ-साथ गाँव के सम्माननीय लोगों को भी केसोराम ने वहाँ के बड़े मन्दिर में भोज दिया। दो एक को छोड़कर केसोराम के घर के सभी लोग बड़े मन्दिर में पहुँच गये।

रात हो चली थी। केसोराम के घर में प्रकाश की तो काफी व्यवस्था थी। पर आदमी के नाम पर एक मेहरी और केसोराम की बहिन लक्ष्मी के सिवाय और कोई नहीं था। एकान्त के इस वातावरण में भीखू पहलवान दो अन्य लोगों के साथ केसोराम के घर के पिछवाड़े से दीवार फांदकर अन्दर घुस गया और मिनटों में तिजोरी को तोड़ने में सफल हो गया। उसमें रक्खे पांच हजार रुपये निकालकर वे लोग चम्पत हो गये। मेहरी

ौर लक्ष्मी बाहर के दरवाजे पर थीं। उन्हें जरा भी खबर न होने पाई।

दीवार के पास ही मंगल बिहारी खड़ा था। भीखू ने हजार-हजार रुपयों की पांच गड्डियां उसके हाथों में रख दीं। भीखू के साथी दूसरी ओर से भाग निकले। वह स्वयं मंगल बिहारी के साथ हो लिया। जब तक घर पहुंचे, रात के ग्यारह बज चुके थे।

दोनों ने हल्के पांव रखते हुए दरवाजे के अन्दर प्रवेश किया। दोनों के पांव मन की घबराहट से लगभग कांपने लगे थे।

मंगल बिहारी की पत्नी मीना की आंख अभी लगी ही थी। वह यह सोचकर सो गई थी कि उसके पति को तो सरपंच ने भोजन में बुलाया है। जाने रात को कब आना हो। लेकिन खटपट और घुसपुस बातचीत के स्वर उसके कानों में पड़े तो उसकी निद्रा टूटी। वह खटिया से उठ बैठी। खड़ी होकर आगन तक आई। एक नजर अन्दर के कमरे में दौड़ाई। रात के अंधेरे में उसने जो कुछ देखा उससे यह अन्दाज लगाया कि जरूर उसके पति ने भीखू के साथ मिलकर कोई चोरी अथवा अन्य अपराध किया है। उसने देखा—उसके पति ने आलमारी के अन्दर वाले चोर खजाने का दरवाजा खोला और उसमें पांच हजार रुपये रखे। मीना को पूर्ण विश्वास हो गया कि उसके पति ने कोई चोरी की है।

वह अपनी खाट पर आकर पुनः पड़ रही। उसने अपने पति को इस बात का आभास नहीं होने दिया कि उसने सब कुछ देख लिया है। किन्तु वह मन ही मन क्षुब्ध एवं चिंतित हो उठी।

मंगल बिहारी आकर उसके पास बिछी खटिया पर लेट गया। किन्तु उसकी आंख नहीं लग सकी। मीना भी नहीं सो सकी। वह रात भर मंगल बिहारी को चिंतित अवस्था में करवटें बदलते देखती रही।

सूर्य की प्रथम किरण के साथ ही मीना उठ गई। उसने देखा, मंगल बिहारी खाट में सोया खर्राटे भर रहा है। मीना उठकर सीधी अन्दर के

कमरे में चली गई। पुरानी चाबियों का गुच्छा लेकर वह अलमारी ताला खोलने में सफल हो गई। मीना ने चोर खजाने को खोला तो न के बण्डल देखकर दंग रह गई। एक क्षण उसके मस्तिष्क में प्रश्न उठा आखिर इतने रुपये उसके पति के पास आये कहाँ से? कल तक तो स्वयं तीन-चार सौ रुपयों की व्यवस्था के लिए उसके गहने रहन रखने लिए कह रहा था। फिर एकाएक नोटों के इतने बण्डल? हो न ह इसमें जरूर कोई रहस्य है। उसके रोम-रोम में एक अजीब सनसनी दं पड़ी। उसने नोटों को अन्दर रखा और झट से दरवाजा बन्द कर दिया वह अपने काम में लग गई और स्वयं मंगल बिहारी से इस रहस्य को जान की प्रतीक्षा करने लगी।

आज सुबह से ही मंगल बिहारी कोई भी काम ठीक तरह से नहं कर पा रहा था। कहीं किसी बात में अपना मन नहीं लगा सका था भोजन के समय मीना ने बात छेड़ी—रात को आप चौधरी के घर से कब आये?

बहुत देर से।

आपके साथ कौन था?

कोई नहीं, मैं अकेला था—मंगल बिहारी ने कहा।

मीना को पूरा विश्वास हो गया कि उसके पति ने वे रुपये चुराये हैं और उनके विषय में ठीक तरह से कुछ नहीं बताना चाहता। उसने फिर कोशिश की। बोली—रात को मुझे ऐसा लगा जैसे अन्दर कमरे में आप किसी से कुछ बातचीत कर रहे हों।

मंगल बिहारी कुछ चौंका और एक संशय भरी नजर मीना के चेहरे पर डाली। मीना उसे गौर से देख रही थी। मंगल की आँखें एकाएक झपक गईं और उसके चेहरे पर ऐसे भाव उभर आये जैसे वह कुछ छिपाना चाहता हो। बोला—तुम्हें भ्रम हो गया होगा। मैं तो आते ही सो गया था—इतना कहकर वह आधा भोजन करके ही उठने लगा।

मीना ने सोचा, यों बात नहीं बनने की । बेलन-चकले को छोड़ा और रसोईघर से बाहर आ गई । अपने स्वर में कुछ जोश भरकर बोली—अलमारी में रखे हुए रुपये किसके हैं ?

मंगल बिहारी इस अप्रत्याशित प्रश्न को सुन कर चौंक पड़ा । सोचा मीना को इसकी खबर कैसे हुई ? फिर भी लड़खड़ाते हुए स्वर में बोला—कैसे रुपये ? किसके रुपये ? मुझे कुछ पता नहीं लेकिन तुम्हें यह सब कैसे मालूम ?

मैं घर में रहती हूँ । घर की बातों का मुझे पता नहीं रहेगा तो और किसे रहेगा ? सच बताइये वे रुपये किसके हैं ? — कहते हुए मीना काफी गम्भीर हो गई थी ।

मेरे हैं । तुम्हें इससे मतलब ?—मंगल बिहारी ने कहा ।

लेकिन कल तो आप मुझसे सिर्फ तीन सौ रुपयों के लिए मेरे गहने माँग रहे थे, और आज इतना धन ? सच बताइये कहाँ से आये ये रुपये ?

मीना तुमसे कह दिया, ये रुपये मेरे हैं । बस, आगे मत बोलो । वरना मेरे हाथ उठ जायेंगे—मंगल बिहारी क्रोधित हो उठा ।

तभी गाँव का एक लड़का दौड़ता हुआ घर के अन्दर घुस आया । आश्चर्य करने लगा—मीना बुआ ! मीना बुआ ! चौधरी केसोराम के घर चोरी हो गई । चोर पंचायत का पाँच हजार रुपया ले गये ।

मीना को पूरी बात समझ में आ गई । अपने पति से बोली—तो ये बात है । चौधरी के घर से पंचायत का सारा रुपया इस घर में आया है । घर की चोरी छिपे, ताकि चौधरी का नाम गाँव में बदनाम हो जाये । लोग सरपंच के मुँह पर थूकें कि उसने पंचायत के रुपयों से बेटी का ब्याह कर दिया । यही बात है न बताओ ?—और मंगल बिहारी के ऊपर की दृष्टि किये बिना ही बोली—रुपया लौटा दीजिये वरना अनर्थ अवश्य न होगा ।

मंगल बिहारी जो मीना के आशय को समझ चुका था बोला—मीना मैंने कदम बढ़ाकर पीछे हटाना नहीं सीखा । याद रखो, यदि इस बात की किसी को कानोंकान खबर हो गई तो तुम्हारी जान की खैर नहीं ।

किन्तु मीना ने इस हिदायत की परवाह न करते हुए कहा—मुझे डर नहीं, चाहे मेरी जान क्यों जावे । पर मैं पंचायत के रुपयों को यों नहीं लुटने दूँगी । सरपंच के मुख पर कालिख नहीं पुतने दूँगी ।

जानती हो, इस मामले में तुम्हारे कहने भर से मुझे जेल की हवा खानी पड़ सकती है । क्या तुम सरपंच और पंचायत के लिए मेरी इज्जत अपनी इज्जत सब मिट्टी में मिला दोगी ?—वह बोला ।

यदि असत्य और पाप की राह में जाने वाले पति का साथ देना इज्जत की बात है तो मुझे ऐसी इज्जत नहीं चाहिये ?—मीना ने ठोस शब्दों में कहा ।

अच्छा, तो तुम अब इस बात पर उतारू हो गई हो । सब से पहले तुम्ही को सच्चाई का मजा दिखाता हूँ । सब से पहले तुम्हीं को अपने रास्ते से हटाना होगा—वह कर गुस्से में मंगल बिहारी ने मीना के मुँह पर गमछा बांध दिया और एक रस्सी से उसके दोनों हाथ बांधकर उसे घर के बड़े से कोठार में बन्द कर दिया, जिसमें सिवाय एक ऊँचे रोशनदान के हवा आने का मार्ग भी नहीं था । बाहर ताला लगाया और चल दिया ।

गाँव में चोरी की खबर हवा की तरह फैल गई । कोई कह रहा था—अजी चोरी का तो बहाना है, आखिर बारात में इतने लोग आए थे तो एकाएक रुपयों की व्यवस्था कहाँ से होती ?

किसी ने फुसफुसाया—शादी के लिए पैसे नहीं थे तो अभी क्या जल्दी थी । लड़की दो साल और बैठी रहती । पंचायत का पैसा यों पचेगा क्या ?

महिलायें तो और भी बढ़ा-चढ़ा कर बातें कर रहीं थी—अरे हम ने देखें, नहीं-नहीं करते हुए भी बहू के गहने भी तीन-चार हजार के तो

हो गये। घर का साज-समान दिया, वो भी पाँच हजार से कम नहीं। फिर अस्सी लोगों की बारात आज तीन दिन से अच्छे से अच्छा खा-पी रही है। पंचायत का पैसा नहीं होता तो चूल्हे की राख उड़ती।

जितने मुँह थे उतनी ही बातें थी। बारात में आये लोगों मे भी अविश्वास की एक लहर दौड़ गई। उन्हे केसोराम की ईमानदारी पर सन्देह होने लगा। बहुत से मुँहफट बारातियों ने तो साफ-साफ कह दिया—हमे चोरों की बेटी अपने घर नहीं ले जानी है।

दूल्हे के पिता को भी कुछ समझ मे नहीं आ रहा था। सन्देह की एक रेखा उसके मन में भी खिंच गई थी। केसोराम से बोले—भाई, मैं मजबूर हूँ। जब तक चोरी का पता नहीं लग जाता और गाँव के लोगों का भ्रम नहीं मिट जाता, शादी को रोकना पड़ेगा।

केसोराम एकदम चुप था। आई बारात लड़की के पिता पर सदेह करके लौट जाय इससे अधिक बेइज्जती की बात उसके लिए और कोई नहीं थी। साथ ही लोगों के सन्देह के निवारण की राह भी उसे नहीं सूझ रही थी। गांव भर मे उसकी इज्जत का प्रश्न था। केसोराम अनेक बातें सोचता हुआ सर पर हाथ रखे बैठा हुआ था।

मुहूर्त निकल गया। शादी स्थगित कर दी गई। केसोराम के पास चोरी हो जाने का कोई भी सबूत नहीं था। गाँव में किसी पर उसे सन्देह नहीं था। नाम भी किसका लेता ?

शाम को पंचायत बुलाई गई। उप सरपंच पन्द्रह दिनों के लिए भारत यात्रा पर गये हुए थे। अतः मगल बिहारी को अस्थाई सरपंच चुन लिया गया। इस मामले की पुलिस को खबर देना उचित नहीं समझा गया। मगल बिहारी आज बहुत खुश था। वह अपने तीर को निशाने पर लगा देखकर मन ही मन फूला नहीं समाता था।

चौपाल पर गाँव के लोग इकट्ठे हो गये। बच्चे, बूढ़े, जवान, औरत मर्द। पंच आकर के अपने पद पर आसीन हुए। केसोराम एक ओर उदास

और शान्त ग्लानि-भरे मन से खड़ा था। सभी की निगाहें उसके चेहरे पर जमी थीं।

एकाएक खामोशी छा गई। पंचों के सामने चोरी का पूरा हवाला दिया गया। हवाला देने वाले ने अन्त में कहा—गाँव में हुई यह चोरी आश्चर्यजनक घटना है। लोगों का ख्याल है कि केसोराम ने पंचायत के रुपयों से अपनी लड़की के विवाह की व्यवस्था की है और वह चोरी का बहाना करके रुपया हड़पने की कोशिश में है। अब पंच अपना जो भी फैसला दें।

पंचों का ख्याल था कि जब तक केसोराम किसी पर सन्देह नहीं करता और अपनी लड़की की शादी के सामान के विषय मे नहीं बताता, जो लगभग उतनी ही रकम का है, जितनी रकम चोरी गई है, तब तक फैसला उसके पक्ष में होने की सम्भावना नहीं।

किन्तु केसोराम ने तब भी कुछ नहीं कहा और शान्त भाव से अपनी पूर्वस्थिति मे खड़ा रहा। इसका कोई भी हल उसके सामने नहीं आ रहा था।

पंचों ने सरपंच को अपनी राय दे दी। अब फैसला होना था। सरपंच भरे आम गाँव के लोगों को अपना फैसला सुनाने वाला था। केसो-राम से एक बार और अपनी सफाई मे कुछ कहने का अनुरोध किया गया, र वह नहीं बोला।

मंगल विहारी खड़ा हो गया और अपना फैसला सुनाने लगा—चोरी हालात देखकर और गाँव के लोगों की राय लेकर पंचों ने यह फैसला या है कि······केसोराम······केसोराम ·· ····

और तभी दूर से किसी ने मन्द-स्वर में पुकारा—ठहरो! चोर का चल गया है।

सबकी निगाहें घूम गईं। दूर से आती हुई छाया अब अधिक स्पष्ट धारण करती जा रही थी। शाम के धुंधले प्रकाश में लोगों ने देखा—

एक औरत अपनी झोली में कुछ डाले हुए, अपने अशक्त पैरों से चौपाल की ओर बढ़ रही है। नजदीक आने पर कुबेर ने उसे पहचान लिया।

यह मीना थी, जो अपनी जान की बाजी लगाकर कोठार के रोशनदान से कूदकर आई थी। उसका सिर खून से लथपथ था। चौपाल के नजदीक आते-आते उसके कदम लड़खड़ाने लगे थे और वह गिर पड़ी। उसकी झोली से पांच हजार के नोट बिखर पड़े। वह अपनी घुटी सी और हल्की आवाज में इतना ही कह सकी—मैंने चोरी की है। चोर मैं हूँ—और बेहोश हो गई।

चारों तरफ शोर मच गया। हर ओर—मीना बुआ! मीना बुआ! का स्वर गूंज गया। भीड़ में लोगों ने अनेक बातें कही—मीना बुआ कभी घर की देहरी से बाहर नहीं निकली। चोरी किसी और ने की है। यह क्या, इनके सिर पर यह खून कैसा? पांव एकदम अकड़ गये हैं।

मंगल बिहारी दौड़ता हुआ उसके करीब आया। उसने देखा—एक ओर पाँच हजार के नोट बिखरे हुए हैं, दूसरी ओर उसकी पत्नी मीना अशक्त और बेहोश होकर बेहाल पड़ी है। यह दर्दनाक दृश्य देखकर उसका मन पसीज गया। उसने कभी यह नहीं सोचा था कि उसकी पत्नी पचायत के हित के लिए अपनी जान तक से भी खेल जाने के लिए नहीं हिचकेगी। उसके रोम-रोम में एक कम्पन दौड़ गया। द्रवित हृदय से उसे अपनी गोद में उठा लिया। बोला—मीना! मीना, होश मे आओ।

इससे पहले कि मीना के सामने मंगल बिहारी अपने पाप का प्रायश्चित करता, मीना के प्राण परोरू उड़ गये। उसका शरीर ठण्डा हो गया। देखते ही देखते मंगल बिहारी के हाथों मे मीना की लाश थी।

आज पहली बार उसके मन को इतनी गहरी ठेस लगी कि उसकी अन्तरात्मा उसे बार-बार धिक्कार रही थी। उसके पाप उसकी आँखों के सामने प्रेत बनकर नाचने लगे। उसका पत्थर हृदय मोम बनकर पिघल गया। आँखों से ढेर सारे गर्म-गर्म आँसू चू पड़े।

मीना के बलिदान ने उसे जिन्दगी भर के लिए सबक सिखला दिया था। पंचों के सम्मुख मीना की लाश को रखकर बोला—चोर मैं हूँ पापी मैं हूँ। मैंने पंच और पंचायत की व्यवस्था को बदलने की कोशिश की। सरपंच के पद पर आसीन होकर पक्षपात की नीयत रक्खी। पर क्या आप मुझे इससे बड़ी और कोई सजा दे सकते हैं? मुझे आज पहली बार भगवान के घर से सजा मिली है!

उसके आँसू थामे नहीं थमते थे।

❖

और वह लौट गया

इन्टरव्यू के लिये आये हुए युवकों में विपिन को एक ही युवक ने अधिक सोचने के लिए मजबूर कर दिया था। यद्यपि उसके पास समय बहुत कम था फिर भी विपिन अपने मन की आकांक्षा को सहज ही में नहीं दबा पाया और उस युवक के पास पहुंच गया। कुछ क्षण पूर्व जब उस निस्तेज आंखों वाले युवक को विपिन ने देखा था, तो सोचा था कि इस दुबले-पतले और कमजोर आदमी के विचारों में इतनी स्फूर्ति कहां से आई है? यह आदमी जो शक्ल से इतना कुरूप और बेडौल है अपने अन्दर इतना विश्वास किस कदर बटोरे हुए है कि हर मिलने वाले से अपने सफल होने की बात कह रहा है। यही कुछ सोचकर वह उस युवक के पास पहुंचा था।

नमस्ते—विपिन ने परिचय का हाथ बढ़ाया।

हलो—दोनों ने हाथ मिलाए।

आप भी शायद आफिसर की पोस्ट के लिए इन्टरव्यू देने आए हैं?—विपिन ने पूछा।

हाँ, इन्टरव्यू तो एक फार्मेलिटी है। मेरा सिलेक्शन तो श्योर है—दुबला-पतला युवक इस बार भी एक गर्वपूर्ण हंसी हंसा।

आपने क्या कोई खास तैयारी की है—विपिन ने अपनी प्रश्नसूचक दृष्टि युवक पर गाड़ दी।

तैयारी ? हह···हह – वह हंसा और बोला आप क्या बात करते हैं। मुझे तैयारी करने की क्या जरूरत ? खैर आप नहीं समझेंगे इस बात को। कहिए आप कहाँ से पधारे हैं ?

बूंदी से।

मेरे चाचा जी अब बूंदी में मेजिस्ट्रेट थे। तब मैं भी बूंदी गया था। अच्छी जगह है–युवक ने विपिन की बातचीत में दिलचस्पी दिखाई।

फिर कभी आइये—विपिन ने उसे आमंत्रित किया।

अरे भई, अब तो नौकरी की झंझट में पड़ रहे हैं। आप तो देख रहे हैं। इधर इन्टरव्यू हुआ और नौकरी-युवक ने फिर उसी विश्वास के साथ कहा तो विपिन को लगा जैसे वह इन्टरव्यू के लिए आए हुए प्रत्याशियों को चुनौती दे रहा है।

बी. ए. में आपका कौनसा डिवीजन था ?–विपिन ने प्रश्न किया।

रायल डिवीजन—युवक हल्के से मुस्कुराया।

ओह ! थर्ड डिवीजन। लेकिन सुना है इन्टरव्यू के लिए तो फर्स्ट डिवीजनर्स को बुलाया है—विपिन ने बिल्कुल साधारण ढंग से कहा।

बुलाया होगा—युवक ने लापरवाही से कहा और फिर बात बदलते ए बोला—हां भाईजान, आपकी शिक्षा कहाँ तक हुई है ?

मैं एम. ए. फर्स्ट क्लास हूँ ?—कहते हुए विपिन को क्षण थोड़े गर्व अनुभव हुआ। किन्तु दूसरे ही क्षण जाने क्यों वह निरुत्साह सा होकर ा–लेकिन मित्र, घरेलू परिस्थितियों के कारण आगे नहीं पढ़ सका और तो बस, पानी गले तक आ चुका है। एक ओर घर के पांच प्राणियों उदरपूर्ति की चिन्ता और दूसरी ओर सोलह वर्षीय बहिन की शादी का । सोचता था यह नौकरी मिल जाती तो···। और फिर उसे लगा जैसे अपने भावुक स्वभाव के वश नवपरिचित युवक से अपने मन में छिपी गम्भीर बात कह गया है।

कुछ क्षण दोनों चुप रहे। इसी बीच युवक ने विपिन के हाथ से उसके प्रमाणपत्रों की फाइल लेकर देखनी शुरू कर दी।

वह देखता ही रहा गया। विपिन मेट्रिक से एम. ए. तक हर कक्षा में फर्स्ट डिवीजन आया था। स्कूल और कालेज के दिनों में अच्छे खिलाड़ी होने के प्रमाण पत्र भी उसकी फाइल में थे। कालेज में पढ़ते हुए उसने हिन्दी की दो परीक्षायें भी उत्तीर्ण की थीं।

युवक ने मन ही मन सोचा—निश्चय ही विपिन के अतिरिक्त अन्य किसी प्रत्याशी की इतनी शैक्षणिक योग्यता नहीं रही है। वह स्वयं तो उसके सामने कहीं भी नहीं ठहर पाता। विपिन का व्यक्तित्व भी काफी प्रभावशाली है। हाँ, गरीबी और पारिवारिक चिन्ताओं की एक हल्की सी परत जरूर उसके चेहरे पर चढ़ आई है।

टन""टन""टन ! तभी सर्विस कमीशन के टावर की घड़ी ने ग्यारह बजाए अब इन्टरव्यू होने में सिर्फ आधा घण्टा शेष था। दोनों ने तय किया कि वे दूसरे प्रत्याशियों से भी भेंट कर लें।

आज जिस पद के लिए साक्षात्कार होने वाला था, उसका सिर्फ एक ही स्थान रिक्त था और उसके लिए कोई तीस प्रत्याशियों को बुलाया गया था। लिहाजा तीस प्रत्याशियों में से एक युवक को अधिकारी पद के लिए चुना जाना था।

दूसरे प्रत्याशियों से परिचय के दौरान जब विपिन को मालूम हुआ कि वह दूसरा युवक जिससे वह कुछ क्षण पहले बातचीत कर रहा था—सिलेक्शन कमेटी के एक अधिकारी सज्जन का निकटतम रिश्तेदार है, तो उसकी रही सही आस भी जाती रही। उसे लगा जैसे एक खास तरह का अन्धेरा उसके गिर्द छाया जा रहा है। वह सोच रहा था कि निश्चय ही वह युवक अपने रिश्तेदार की सिफारिश के बल पर ही अपने चुने जाने की बातें कर रहा होगा। और कोई कर भी क्या सकता है ? सर्विस कमी-

शन ने सभी को इन्टरव्यू में बुलाया है। सभी का साक्षात्कार होगा। लेकिन यह सिलेक्शन कमेटी की मर्जी पर है कि वह किसे ले।

प्रत्याशियों के मिलने के बाद विपिन को जो संतोषप्रद बात लगी थी, वह यह थी कि वह सब से अधिक योग्य और आकर्षक व्यक्तित्व वाला था। किन्तु जो बात उसके मन के किसी कोने में जा अटकी थी वह कहीं अधिक दुखदायी थी। निश्चय ही वही युवक उसके चुनाव में एक रोड़ा है जिसके पास सिफारिश का बल है। यही सोचकर उसकी आशा बझी जा रही थी कि आज का जमाना सिफारिश का जमाना है। कदाचित उसकी योग्यता और आवश्यकता पर विचार नहीं हो सकेगा।

सभी उसकी दृष्टि कृशकाय युवक पर पड़ी। विपिन ने देखा कि एक क्षण पहले जो युवक स्फूर्ति दिखा रहा था, अब किसी गम्भीर चिन्ता में डूब गया है।

आफिस की घंटी टनटनाई। इन्टरव्यू शुरू हो गये।

एक—दो—दस-ग्यारह और बारहवाँ नाम था विपिन का।

विपिन वर्मा—चपरासी ने पुकारा।

विपिन मन में साहस भर कर कमरे के अन्दर पहुँच गया। उससे पूछे गये सभी प्रश्नों के उत्तर मुस्तैदी से तथा सही सही दिये। बाहर आने पर कृशकाय युवक ने बड़ी जिज्ञासा के साथ पूछा—कहो भई, इन्टरव्यू ठीक तरह से हो गया न? सिलेक्ट तो हो जाओगे न?

विश्वास तो यही है, यदि कोई सिफारिशी न टपक पड़े तो"—विपिन आगे कुछ कहता इससे पहले ही वह युवक सहित कमीशन कार्यालय से बाहर चला गया था। विपिन दंग सा रह गया। चपरासी ने उसका नाम भी पुकारा किन्तु वह लौटकर नहीं आया। चलते हुए वह सोच रहा था—विपिन ही योग्य उम्मीदवार है जिसका चयन होना चाहिए। सिफारिश ही....?